ब्रह्म सूत्र

(वेदान्त दर्शन)

ॐ

रमेशचन्द्र गुप्ता

पुस्तक सार

◆ब्रह्मसूत्र मुख्यतः ब्रह्म के विषय में और जगत की रचना के विषय में है। यहाँ बताया गया है कि जगत की रचना करने वाला ब्रह्म है। ब्रह्म ने इच्छा की और जगत का निर्माण हो गया।

◆प्रकृति जड़ है और जड़ प्रकृति किसी वस्तु की रचना नहीं कर सकती क्योंकि वह संकल्प नहीं कर सकती।

◆वेद वचनों का आदेश है कि ईश्वर में लीन हो जाओ, जो ईश्वर में लय हो जाता है, वह जन्म मरण से मुक्त हो जाता है।

◆ईश्वर आनन्दमय है और आत्मा में आनन्द का अभाव है, आत्मा ईश्वर में लय होकर आनन्द को प्राप्त करती है।

◆ईश्वर आकाश रूप है। इसमें सब भूतों का वास है।

◆प्राण और आकाश के लक्षण एक से हैं, अतः प्राण भी ब्रह्म है।

◆ईश्वर ज्योति रूप है और हमारे सबके हृदय में निवास करता है, वहीं अनुभव किया जा सकता है। सूर्य ईश्वर नहीं है, उसमें जो प्रकाश है वह ईश्वर है।

◆जो ईश्वर तक पहुँच गया जैसे इन्द्र, सब कुछ धारण करता है जैसे आकाश, वह ईश्वर है।

◆जो ईश्वर तक ले जाए जैसे गायत्री, वह भी ब्रह्म है।

(शेष दूसरे फ्लैप पर)

ब्रह्म सूत्र

(वेदान्त दर्शन)

भावानुवाद

गायत्री मंत्र	काव्य अनुवाद
ओ३म् भूर्भुव:	ॐ प्राण में प्राण तू दूर करे दुख ताप।
स्व: तत् सवितु:	सुख दे सब संसार को जिसे रचे तू आप।
वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि	देवों का भी पूज्य तू शुद्ध दीप्त करतार। हम तुझको धारण करें तू सबका आधार।
धियो यो न:	उत्तम गुण से युक्त हों जग में सब इनसान।
प्रचोदयात्।	धी पावन व्यवहार शुद्ध सब के कर भगवान।2..

ब्रह्म सूत्र

(वेदान्त दर्शन)

लेखक

रमेश चन्द्र गुप्ता

अयन प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली

ISBN : 978-93-88471-57-2

अयन प्रकाशन
1/20, महरौली, नई दिल्ली - 110 030
दूरभाष : 9818988613
e-mail : ayanprakashan@rediffmail.com
website : www.ayanprakashan.com

•

मूल्य : 500.00 रुपये

प्रथम संस्करण 2019

BRAHM SUTRA (VEDANT DARSHAN)
by Ramesh Chander Gupta

मुद्रक : एस.पी. कौशिक एण्टरप्राइज़ेज, शाहदरा, दिल्ली-110093

भूमिका

वेदों का ज्ञान भिन्न-भिन्न ऋषियों ने भिन्न-भिन्न कालों में अपने-अपने जिज्ञासु शिष्यों को दिया। वह ज्ञान आज भी कई उपनिष्दों के रूप में उपलब्ध है। महर्षि वेद व्यास जी ने सब उपनिष्दों का सार सूत्रों के रूप में ब्रह्म सूत्र में व्यक्त किया है। यह ग्रन्थ भारतीय साहित्य की सर्वोत्कृष्ट मणियों में एक है।

मेरा परिचय इस ग्रन्थ से श्री बालगंगाधर तिलक जी के 'गीता रहस्य' को पढ़ते समय हुआ। उन्होंने समझाया है कि भगवद्गीता का ज्ञान, उपनिषदों का ज्ञान एवं ब्रह्म सूत्र के ज्ञान को प्रस्थानत्रयी नाम से जाना जाता है। मैंने जब गीता काव्यानुवाद करने के बाद कठ आदि नौ उपनिषदों का काव्यानुवाद कर लिया तो इच्छा हुई कि ब्रह्म सूत्र के सूत्रों का भी काव्य में भावानुवाद करूँ। यह शायद मेरे गुरुदेव जी की कृपा थी, जिस कारण मैं इस शुभ कार्य को आरम्भ कर सका। मुझे संस्कृत का ज्ञान तो है नहीं, हिन्दी इंग्लिश में लिखे ग्रन्थों को पढ़कर मेरी तुच्छ बुद्धि को जो समझ आया वह प्रस्तुत पुस्तक रूप है।

डॉ. त्रिप्ता गुप्ता, जिन्होंने ब्रह्म-सूत्र पर पीएच.डी. की है, ने पूरी पांडुलिपि पढ़ी और कई सुझाव दिए। मैं उनका हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। डॉ. त्रिप्ता दिल्ली में संस्कृति विषय की प्रोफेसर थीं और आजकल समाज सेवा के कार्यों में लगी रहती हैं।

मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमति प्रेमलता का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने सारे काव्य का कई बार अवलोकन किया और समय-समय पर लेखन में अपने सुझावों से सहायता की जिनके बिना यह काव्य शायद न लिखा जा सकता।

- रमेश गुप्ता
48 रिहाड़ी कालोनी
जम्मू (जम्मू-कश्मीर)
मोबा. : 09622241873, 01912560696

अनुक्रम

तन आत्मा ईश्वर का रिश्ता
कितना है यह विस्मयकारी
सारा जीवन साथ रहें पर
फिर भी परिचय की दुशवारी।

पुस्तक सार

- ब्रह्मसूत्र मुख्यत: ब्रह्म के विषय में और जगत की रचना के विषय में है। यहाँ बताया गया है कि जगत की रचना करने वाला ब्रह्म है। ब्रह्म ने इच्छा की और जगत का निर्माण हो गया।
- प्रकृति जड़ है और जड़ प्रकृति किसी वस्तु की रचना नहीं कर सकती क्योंकि वह संकल्प नहीं कर सकती।
- वेद वचनों का आदेश है कि ईश्वर में लीन हो जाओ, जो ईश्वर में लय हो जाता है, वह जन्म मरण से मुक्त हो जाता है।
- ईश्वर आनन्दमय है और आत्मा में आनन्द का अभाव है, आत्मा ईश्वर में लय होकर आनन्द को प्राप्त करती है।
- ईश्वर आकाश रूप है। इसमें सब भूतों का वास है।
- प्राण और आकाश के लक्षण एक से हैं, अत: प्राण भी ब्रह्म है।
- ईश्वर ज्योति रूप है और हमारे सबके हृदय में निवास करता है, वहीं अनुभव किया जा सकता है। सूर्य ईश्वर नहीं है, उसमें जो प्रकाश है वह ईश्वर है।
- जो ईश्वर तक पहुँच गया जैसे इन्द्र, वह ईश्वर की तरह सब कुछ धारण करता है जैसे आकाश। वह ईश्वर है।
- जो ईश्वर तक ले जाए जैसे गायत्री, वह भी ब्रह्म है।
- आत्मा अल्पज्ञ है और ईश्वर सर्वज्ञ।
- आत्मा सर्वव्यापक नहीं, ईश्वर सर्वव्यापक है। आत्मा पूरे शरीर

में सब जगह रहती है। प्रलय के समय सब जड़ और चेतन ईश्वर में लय हो जाते हैं।

- ईश्वर को तर्क से नहीं समझा जा सकता।

- कारण काया ही आत्मा को परम धाम तक ले जाती है। ईश्वर ही सब शक्तियों की खान है।

- आत्मा को उस के किए कर्मों का फल मिलना निश्चित है पर वह किस क्रम में मिलेगा निश्चित नहीं है। यह व्यवस्था ईश्वर करते हैं।

- स्वप्नों में जो दिखाई देता है, स्वप्नों में जो सुनाई देता है, वह सत्य नहीं होता, जागृत अवस्था की अनुभूतियाँ ही सत्य होती हैं।

- संसार की रचना का क्रम भिन्न-भिन्न शास्त्रों में भिन्न-भिन्न वर्णित है। वह सिर्फ समझाने के लिए है। सब में एक बात सामान्य है कि संसार की रचना भगवान ही करते हैं।

- प्रलय के समय सब कुछ ईश्वर में लय हो जाता है, कार्य ब्रह्म, सभी देवता, सभी वेद तथा चर-अचर सृष्टि। भगवान सृष्टि की रचना के समय सब की फिर रचना करता है। फिर सब अपने-अपने कार्य में लग जाते हैं।

अध्याय-एक

विषय-सूची

- ईश्वर सूर्य में रहता है पर सूर्य नहीं। सूर्य वही काज करता है जो ईश्वर कहता है....21
- आकाश ब्रह्म है यह सब भूतों का आधार है.....22
- प्राण और आकाश के लक्षण एक हैं अत: प्राण भी ब्रह्म है... .23
- स्वर्ग के ऊपर दिव्य ज्योति है वही ज्योति दिए में है।
- गायत्री ईश्वर तक ले जाती है इसलिए यह भी ब्रह्म है....25, 26, 27
- ब्रह्म ही प्राण है....28
- इन्द्र अपने आप को प्राण कहता है क्योंकि उसने ब्रह्म को जान लिया है....29/30
- जीव प्राण के लक्षण समझने पर यही समझ आता है कि प्राण ब्रह्म हैं और दोनों ईश्वर के आश्रित हैं....31

अध्याय - एक

पाद - एक

1.1.1 दोहा

ब्रह्म जिसे ज्ञानी कहते हैं
कैसे उसका होता वर्णन
ब्रह्म विषय की जिज्ञासाहित
अब करना है समुचित चिंतन।

1.1.2 दोहा

जो जग रचनाकार है
करता प्रलय विधान
जिसमें जग स्थापित रहे
वह ही है भगवान।

1.1.3 दोहा

वेद, शास्त्र, उपनिषद् सब
वर्णन करते ईश
सार सभी का एक है
जग रचते जगदीश।

1.1.4 दोहा

सकल जगत में व्याप्त है
ईश्वर बिन आकार
अतः जगत का ईश ही
उपादान[1] आधार।

1.1.5 (i) दोहा

ईक्षण[2] करके ईश ने
रचा सकल संसार
जड़ ईक्षण ना कर सके
अतः ना रचनाकार।

1.1.5 (ii) दोहा

जड़ प्रकृति ईक्षण करे
अनुचित यह संज्ञान
अतः जगत यह जड़ रचे
उचित नहीं अनुमान।

1.1.6

शास्त्र कहें इस पूरे जग की
रचना करते केवल भगवन
प्रकृति ना जग रचना करती
गौण किसी कारण के कारण।

1.1.7(i)

जगत रचयिता परमेश्वर में
जो आत्मा जब स्थित हो जाती

जन्म, मरण से उस आत्मा की
हो जाया करती है मुक्ति।

1.1.7 (ii)

स्पष्ट यही इससे होता है
परमेश्वर जग रचना करता
प्रकृति नहीं ईक्षण करती है
इस कारण ना जगत रचयिता।

1.1.8

गौण किसी कारण हित भी ना
प्रकृति हित आत्मा[3] सम्बोधन
वरना आत्मा को भी त्यागो
श्रुतियों में होता अनुमोदन।

1.1.9 (i)

अपने में ही लय होने को
वेद वचन करते हैं वर्णन
सबके अंदर में लय कारक
जगत रचयिता हैं परमात्मन।

1.1.9 (ii)

प्रकृति अगर होती लय कारक
तो वह कर सकती सब कुछ लय
यह 'जड़ रूपा' तब ना होती
इसमें कोई भी ना संशय।

1.1.10

सारे शास्त्रों ने ही जग में
ऐसा दिग्दर्शन करवाया
चेतन ईश्वर ने ही केवल
जग रचना की यह समझाया।

1.1.11 दोहा

बारम्बार श्रुति वचन
देते हैं यह ज्ञान
जगत रचयिता एक है
औ वह है भगवान।

1.1.12 दोहा

बार बार श्रुतियाँ कहें
आनन्दमय भगवान
इसमें प्रत्यय मयट[4] है
संशित कुछ का ज्ञान।

1.1.13 दोहा

ऐसे ज्ञानी पुरुष का
उचित नहीं संज्ञान
प्रचुरता सूचक मयट
बिन विकार भगवान।

1.1.14

आनन्द जिसे जो मिलता है
वह मिलता ईश्वर के कारण

दोष अर्थ में मयट नहीं है
ईश्वर हर सुख का भंडारण।

1.1.15

वेदों शास्त्रों के अक्षर जिस
परमेश्वर का करते गायन
उस परमेश्वर का ही होता
आनन्दमयी भी संवादन।

1.1.16 (i) दोहा

सूत्र कहे जो पूर्व[5] में
करते ईश बखान
करवाते आनन्द मय-
ईश्वर की पहचान।

1.1.16 (ii) दोहा

आत्मा, ईश्वर भिन्न हैं
आत्मा बिन आनन्द
अल्पज्ञ, परिमित आत्मा
ईश्वर परमानन्द।

1.1.17

ब्रह्म तथा आत्मा की व्याख्या
शास्त्र भिन्न बतलाते हैं
आनंद ब्रह्म है, औ आत्मा
आनन्द रहित समझाते हैं।

1.1.18 दोहा

सृष्टि रचूँ कर कामना
सृष्टि रची परमेश
प्रकृति जड़ मायामयी
आनन्द नहीं, लेश।

1.1.19 दोहा

आत्मा में आनन्द ना
यह इस की पहिचान
लय हो सकती ईश में
उचित यही है ज्ञान।

1.1.20 दोहा

हृदय में औ सूर में
जो करता नित वास
वह ईश्वर है ब्रह्म है
श्रुतियों का विश्वास।

1.1.21 दोहा

भिन्न सूर्य से, सूर्य में
रहते हें परमेश
सूर्य करे वे काज सब
जो दें वे आदेश।

1.1.22 दोहा

निःसंदेह आकाश है
भूतों का आधार

इसमें लक्षण ब्रह्म के
जो रचता संसार।

1.1.23 दोहा

प्राण तथा आकाश के
लक्षण एक समान
जन्म, मरण हो प्राण से
ब्रह्म स्वयं है प्राण।

1.1.24 (i)

स्वर्गलोक से भी बहु ऊपर
दिव्य ज्योति है जो बहु ज्योतित
परमधाम में औ हिय अंदर
वह ही होती है आलौकित।

1.1.24 (ii) दोहा

दिव्य परम इस ज्योति के
चार[6] बताए पाद
यह ज्योति भी ईश है
किंचित् नहीं विवाद।

1.1.25 (i) दोहा - एक शंका

गायत्री गुरुमंत्र हित
कुछ कहते विद्वान
चार पदों युत मंत्र यह
ब्रह्म नहीं संज्ञान।

1.1.25 (ii) दोहा (समाधान)

गायत्री से अर्पित हों
परमेश्वर में प्राण
इस कारण फिर ब्रह्म का
हो जाता है ज्ञान।

1.1.25 (iii)

बहुत स्थानों पर ऐसा
दिया हुआ है ज्ञान
इस हेतु गायत्री को
दिया ब्रह्म सम्मान।

1.1.26

चार[7] पदी गायत्री का है -
परमब्रह्म से एक्य स्थापित
इसका आशय छंद नहीं यह -
ईश्वर को करती प्रतिपादित।

1.1.27 दोहा

गायत्री अरु ज्योति के
भिन्न-भिन्न दो बोध
ब्रह्म-सार, जब मंत्र यह
अनुचित है अवरोध।

1.1.28 दोहा

श्रुतियाँ कहतीं ब्रह्म से
वाचित होता प्राण

पूर्वापर प्रसंग भी
देें ऐसा ही ज्ञान।

1.1.29 (i) दोहा - शंका

इन्द्र प्राण निज को कहे
अतः ब्रह्म ना प्राण
जो ऐसा चिन्तन करे
वह ना है विद्वान।

1.1.29 (ii) दोहा - समाधान

आध्यात्मिक सम्बन्ध में
आया यह संज्ञान
जिसमें बोला इन्द्र ने
अपने को ही प्राण।

1.1.30 (ii) दोहा - समाधान

इन्द्र ईश में लीन था
शास्त्रोचित विद्वान
वामदेव जी की तरह
उसको था सब ज्ञान।

1.1.31 (i) दोहा

जीव प्राण लक्षण समझ
अगर ब्रह्म ना प्राण
त्रैविध[8] तब पूजा बने
अतः उचित ना ज्ञान।

1.1.31(ii)

जीव प्राण सबके धर्म
आश्रित श्री भगवान
प्राण शब्द से भी मिले
परम ब्रह्म संज्ञान।

॥ इति अध्याय एक, पाद एक ॥

संदर्भ :

1. उपादान = वह जिससे कोई चीज़ बनती है
2. ईक्षण करना = संकल्प करना
3. आत्मा = परमात्मा
4. मयट् = आनन्दमय में मयट प्रत्यय है यह विचार का द्योतक है पर यहां पर यह आनन्दमय प्रचुरता का द्योतक है।
5. पूर्व = वे ग्रन्थ जिनका सार इन सूत्रों में है।
6. ज्योति जड़ वाचक नहीं। सर्व भूतस्थ इसका एक पाद है। तीन भूत अमृत रूप हैं। परमधाम में रहते हैं।
7. चारपदी = भूत, पृथ्वी, शरीर, हृदय रूप, ये चार हैं।
8. त्रैविध पूजा = जीवोपसना, मुख्य प्राण उपासना, ब्रह्म उपासना।

अध्याय - दो
पाद - दो

विषय-सूची

- केवल ईश्वर का पूजन करो। 1
- वस्तुओं में अपने अपने गुण हैं पर ईश्वर में सब गुण हैं। 2. 18,19
- आत्मा सर्वव्यापक नहीं पर ईश्वर सर्वव्यापक है। 3, 4
- जीवात्मा उपास्य नहीं उपासक है। 5, 6
- ईश्वर हृदय में रहता है पर हृदय ईश्वर नहीं। 7-14
- आत्मा भी हृदय में रहता है। 11
- सुख, दुःख का भोग आत्मा करती है परमात्मा नहीं। 8, 12
- ब्रह्म निर्भय है परमानन्द है। 13, 14
- प्रलय समय सब जंगम और स्थावर ईश्वर में लय होते हैं। 9, 10
- आँखों में देखने वाला ईश्वर है। 13, 17
- ब्रह्म को समझ कर आत्मा ब्रह्म हो जाती है। 16
- जड़ में अपना कोई गुण नहीं उसमें जो गुण हैं वे ईश्वर के हैं। अतः जड़ अन्तर्यामी नहीं हो सकता। 19
- ईश्वर आत्मा के अंदर रहकर आत्मा का नियमन करता है। 21
- आत्मा और प्रकृति जग की रचना नहीं कर सकते। 22

- ईश्वर ही सब भूतों की रचना करता है। 23
- ईश्वर किसी विशेष अग्नि का नाम नहीं हर अग्नि में जो शक्ति हे वह ईश्वर है। 25, 26
- सूर्य आदि लोकों के अधिष्ठाता देवगण वैश्वानर नहीं हैं। वैश्वानर वह है जो विश्वरूप है और नर रूप भी।
- केवल परमेश्वर ही वैश्वानर है। 27, 28
- आवश्यकता हो तो ईश्वर जीव रूप धारण कर लेता है। 29
- ईश्वर मनन करने के लिए किसी विशेष स्थान की आवश्यकता नहीं। 30
- ईश्वर में सारे ऐश्वर्य हैं। 31
- ईश्वर तर्क से समझ नहीं आता, श्रद्धापूर्वक भक्ति से उसका पूजन करना चाहिए। 32

अध्याय - एक

पाद - दो

1.1.1 दोहा

पूजा उसकी ही करें
जो ईश्वर भगवान
वेदों, शास्त्रों आदि में
संचित है यह ज्ञान।

1.2.2 दोहा

जिस जिस भी गुण का मिले
श्रुतियों में सद्ज्ञान
उन सबका भंडार है
परमब्रह्म भगवान।

1.2.3

आत्मा में ना होते दैविक-
सर्वव्यापकता आदिक गुण
इस कारण आत्मा पूजन का
श्रुतियों में ना कोई वर्णन।

1.2.4 दोहा

कर्मों द्वारा मिल सके
जीवात्मा को ब्रह्म
आत्मा पूजक, पूज्य ना
इसमें ना है भ्रम।

1.2.5

पूजित औ पूजक ये दो हैं
इन दोनों में है बहु अन्तर
आत्मा पूजक और पूज्य हैं
सकल जगत में केवल ईश्वर।

1.2.6 दोहा

स्मृति ग्रंथ भी यह कहें
सिद्ध करें यह ज्ञान
जीवात्मा पूजन करे
पूजित श्री भगवान।

1.2.7 (i) दोहा

छोटा सा हिय है जहाँ
करता ब्रह्म निवास
वह छोटा, वह ब्रह्म ना
उचित नहीं विश्वास।

1.2.7(ii) दोहा

जिसको ईश्वर बोलते
व्योम रूप वह एक

हृदय में द्रष्टव्य है
श्रुतियों की यह टेक।

1.2.8 दोहा

कुछ सोचें हिय में विभु
भोगे सुख, दुख भोग
ईश्वर परम विशेष है
अनुचित सोचें लोग।

1.2.9

अचर अवर चर सारे जग में
जंगम हो या कोई स्थावर
प्रलय समय जब जब आता है
लय अपने में करता ईश्वर।

1.2.10 दोहा

जो कुछ बोला पूर्व में
बात यही है एक
ईश्वर सब भक्षण करे
(सब उसकी लें टेक)।

1.2.11 दोहा

शास्त्रों का यह कथन है
उनका यह विश्वास
जीवात्मा औ ईश का
हिय में होता वास।

1.2.12 दोहा

सुख, दुख भोगे जीव ही
ब्रह्म परम आनन्द
दोनों के गुण भिन्न हैं
गुहा निष्ठ सम्बन्ध।

1.2.13 दोहा

जो नेत्रों से देखता
वह ईश्वर भगवान
पूर्वापर में भी यही
दिया हुआ है ज्ञान।

1.2.14 दोहा

परम पुरुष के वास का
श्रुति बताए स्थान
पूर्व कथन[1] ही उचित हैं
अनुचित ना संज्ञान।

1.2.15 दोहा

नेत्र स्थापित परम पुरुष
वही ब्रह्म आनंद
वह अमृत निर्भय कहा
उससे हो सम्बन्ध।

1.2.16 दोहा

उपनिषदादि श्रवण कर
मिलता है यह ज्ञान

नेत्र स्थापित ब्रह्म समझ
ब्रह्म बने इन्सान।

1.2.17

अन्य नहीं केवल ईश्वर ही
नेत्रों अंदर रहता स्थापित
शास्त्रों द्वारा इसी तरह से
ईश्वर किया हुआ परिभाषित।

1.2.18 (i)

अधिभौतिक औ आध्यात्मिक सब
जो कुछ दिखता है इस जग में
अंतर्यामी परमेश्वर ही
दृगगत होते हैं उन सबमें।

1.2.18 (ii)

हर सत्ता में अपने गुण हैं
जो अन्यों से करते अन्तर
उन सबके उन सब गुण अंदर
रहते परम ब्रह्म परमेश्वर।

1.2.18 (iii)

देख सके ना उसको कोई
वह सबको देखा करता है
उसको कोई सुन ना सकता
वह सबका सब कुछ सुनता है।

1.2.19 (i)

सांख्य बताए जो भी जितने
द्रष्टापन आदिक गुण न्यारे
वे गुण जड़ के ना होते हैं
वे गुण हैं ईश्वर में सारे।

1.2.19 (ii)

जब सारी ही जड़ माया में
कोई भी ना अपना गुण है
तब कैसे उस हित हो सकती
'अन्तर्यामी' अवधारण है।

1.2.20 (i)

माध्यान्दिनी, कण्व धाराएँ
आध्यात्मिक दर्शातीं दर्शन
वे जीवात्मा परमात्मा के
भिन्न भिन्न गुण करतीं वर्णन।

1.2.20 (ii)

परमात्मा ही आत्मा अंदर
रह करके करता सब नियमन
निर्णायक अन्तर्यामी वह
ब्रह्म कहा जाता इस कारण।

1.2.21

शास्त्रों द्वारा जो समझाया
अदृश्य[2], अग्राह्य[3], परम अगोचर

सर्वज्ञी आदिक गुणधारी
वह आत्मा ना, वह है ईश्वर।

1.2.22

प्रकृति आत्मा में वे गुण ना
जो ये जानीं जाएँ ईश्वर
इस कारण से ये दोनों ही
ना हो सकतीं जग रचनाकर।

1.2.23 दोहा

श्रुतियों में है ईश का
विश्वत्रूप[4] बखान
सबका कारण ईश है
यह है तात्विक ज्ञान।

1.2.24

आत्म रूप विराट पुरुष ही
वैश्वानर[5] है, यह ही भगवन
जो केवल जठराग्नि नहीं है-
यह है सर्वगुणी अवधारण।

1.2.25

स्मार्त ग्रंथ भी वैश्वानर को
सर्वगुणी कह करते वर्णन
उनसे भी निष्कर्ष निकलता
वैश्वानर है निश्चित भगवन।

1.2.26 (i)

गाहर्यपत्य[6] आदिक को श्रुतियाँ
वैश्वानर का अंश बताएँ
पुरुषाकार धरें काया में
रहती हैं यह भी समझाएँ।

1.2.26 (ii)

इस कारण कुछ ज्ञानी सोचें
यह विराट ना, ना ईश्वर है
पर जो ब्रह्म दृष्टि से सोचें
सकल जगत ही वैश्वानर है।

1.2.26 (iii)

वैश्वानर ना गार्हयपत्य सी
अग्न किसी को बतलाते हैं
वैश्वानर को पुरुष नाम दे
ब्रह्मदेव यह समझाते हैं।

1.2.27

सूर समान देवगण सारे
नभ सम भूतों के समुदाए
पूर्व कहे कारण के कारण-
वैश्वानर ना ये कहलाए।

1.2.28

वैश्वानर साक्षात ब्रह्म है
ऐसा कहना शास्त्रोचित है

आचार्य 'जैमिनि' ऋषि हुए जो
उनका भी ऐसा ही मत है।

1.2.29

किसी जगह पर किसी समय पर
ब्रह्म जीव बन प्रकटा करता
'आश्मरथ्य' अनुसार जीव हित
काया धारे स्वयं रचयिता।

1.2.30

सतत मनन हित देश काल में
कुछ करते ईश्वर को बाधित
'बादरि' सम आचार्य पुरुष भी
करते ऐसा वर्णन समुचित।

1.2.31

परमेश्वर ऐश्वर्य युक्त है
जैमिनी ने यह मत प्रकटाया
अन्य बहुत से ग्रन्थों ने भी
ऐसा ही सद्भाव सुझाया।

1.2.32 (i)

ब्रह्म विषय में सैद्धान्तिक इन
सूत्रों ने प्रकटाया है मत
परमेश्वर देशोत्तर है औ
सीमित भी इनके अन्तर्गत।

1.2.32 (ii)

ईश सगुण है औ वह निर्गुण
समझ नहीं तर्कों से आता
श्रद्धापूर्वक ज्ञानी उसके
गुण गायण में ही रत रहता।

॥ इति अध्याय एक, पाद-दो ॥

संदर्भ :

1. पूर्व कथन = 1, 2, 3 में कहा ज्ञान
2. अदृश्य = जो दिखाई न दे
3. अग्राह्य = जो ग्रहण न हो सके
4. विश्वत रूप = श्रुति में ब्रह्म के विराट रूप का वर्णन है। इसमें अग्नि ईश का मस्तक है। सूर्य, चांद दो नेत्र, सब दिशाएं कान, वायु प्राण सारा विश्व-हृदय।
5. वैश्वानर = अग्नि
6. गार्हयपत्य = वह अग्नि जो घर में सदा उपलब्ध रहती है।

अध्याय - एक
पाद - तीन

विषय सूची

- सब भूतों की रचना ईश्वर करते हैं। 1
- आत्मा जब ईश्वर में लय हो जाए तो जन्म, मरण से छूट जाती है। 2
- ब्रह्मसूत्र की अवधारणा है कि संसार की रचना प्रधान (प्रकृति) नहीं कर सकती। 3
- आत्मा भी भूतों की रचना नहीं करती। 4
- आत्मा सर्वज्ञ नहीं है, जग की रचना नहीं करती। 5
- सब भूतों की रचना ब्रह्म ही करता है। 6
- जीवात्मा और ब्रह्म तन में वास करते हैं। 7
- भूमा (सबसे बड़ा) जीवात्मा से बड़ा है, उसका सतत स्मरण करो। 8
- ब्रह्म और भूमा के गुण एक समान हैं इसलिए भूमा ब्रह्म है। 9
- ब्रह्म अक्षर है। 10
- इस अक्षर का सर्वत्र शासन है। 11
- ईश्वर अदृश्य है, अनन्त है, अचिन्त्य और अक्षर है। अदृश्य रहकर सबको देखता है। जो ईश्वर का ऐसा चिन्तन करता है उसी को वह अनुभव होता है। 12

- ऊँ त्रैमात्रिक है, ध्यान से अनुभव होता है। 13
- वह कमल रूप में हृदय में वास करता है। वही दहर कहा जाता है। सारा जग उसमें व्याप्त है। 14
- सुषुप्ति में ईश्वर मिलन होता है, लेकिन आत्मा असत् में लिप्त होती है इसलिए अनुभव नहीं करती। 15
- दहर आकाश को भी कहते हैं जो सबको धारण करता है जो सबका प्राण भी है। 16-17
- जीवात्मा दहर नहीं है। 18-20
- आत्मा और परमात्मा हिय के अंदर रहते हैं। 21-23
- आत्मा का नाप अंगूठे के बराबर होता है। जब वह हृदय में आकर रहता है। वहाँ ईश्वर का रूप भी वही होता है। 24-25
- मानव से ऊँची हर योनि भी ईश्वर प्राप्त कर सकती है। 26
- देवता लोग अपने को विग्रह करके सबका भोग स्वीकार करते हैं। 27
- कल्पारम्भ समय ईश्वर देवों की रचना करता है, वे देहधारी नहीं। 28
- वेदों की रचना भी कल्पारम्भ के समय होती है। 29
- कल्प शुरू होने पर सभी देवताओं को पूर्व कर्म करने के लिए कहा जाता है। 30
- यज्ञादि कर्म देवों को आवश्यक नहीं (जैमिनि)। 31
- देवता लोग ऐश्वर्य युक्त लोकों में रहते हैं। 32
- बादरायण ऋषि बतलाते हैं देवता लोग यज्ञ आदि कर्म नियमित करते हैं। 33
- जो क्षोभ करे वह शूद्र है। 34-35
- जिसका उपनयन संस्कार न हो, उसे वेद पढ़ने का अधिकार नहीं। 36
- शूद्रों को ज्ञान मत दो, चाहे वह नर हों या नारी। 37-38

- सभी देवता ईश्वर के अनुशासन में कार्य करते हैं। 39-40
- ईश्वर की भान्ति नभ का भी नाम रूप नहीं इसलिए आकाश ब्रह्म है। 41
- ईश्वर और आत्मा दो हैं। आत्मा पर ईश्वर का शासन है। 43
- आत्मा, परमात्मा दो हैं। परमात्मा को आकाश से संबोधित किया जाता है। आत्मा के लिए आकाश शब्द का प्रयोग गलत है। 42

अध्याय - एक

पाद - तीन

1.3.1

स्वर्ग तथा पृथिवी आदिक का
श्रुतियाँ कहतीं कारण आत्मा
इस आत्मा को ही श्रुतियों ने
बार बार बोला परमात्मा।

1.3.2

नाम रूप तजकर युक्तात्मा
मुक्त जगत से जब हो जाती
परम ब्रह्म में लय होकर वह
जीने, मरने से छुट जाती।

1.3.3

कल्पित कारणवश प्रधान को
कुछ कहते भूतों का कारण
पूर्वापर में समझाया है
ब्रह्मसूत्र की ना अवधारण।

1.3.4

ब्रह्मसूत्र में ऐसा कोई
ज्ञान नहीं होता दिग्दर्शन
जो पृथिवी आदिक भूतों का
बतलाए आत्मा को कारण।

1.3.5

जीवात्मा, परमात्मा दोनों
भिन्न भिन्न गुण के हैं धारक
जीवात्मा सर्वज्ञ नहीं है
इस कारण ना यह जग कारक।

1.3.6

इस प्रकरण में सारा चिन्तन
परम ब्रह्म हित ही वर्णित है
परमेश्वर ही भूत रचयिता
संशय इस में ना किंचित् है।

1.3.7 दोहा

जीवात्मा औ ब्रह्म दो
तन में करते वास
साक्षी रहता ब्रह्म है
आत्मा सुख, दुख दास।

1.3.8 दोहा

जीवात्मा से भी बड़ा
भूमा[1] श्रेष्ठ विशेष

सतत मनन भूमा करो
मिट जाएँ सब क्लेश।

1.3.9 दोहा

जो गुण संगत ब्रह्म में
वे भूमा के धर्म
इस कारण से भी हुआ
भूमा ईश्वर ब्रह्म।

1.3.10 दोहा

अक्षर[2] ही, परब्रह्म है
जो सब में सर्वेश
नभ धरती औ बीच में
कुछ ना इससे शेष।

1.3.11

अचर अवर चर इस धरती पर
जगत स्वर्ग ओ सब भूतों पर
शासक केवल वह अक्षर है
और वही अक्षर है ईश्वर।

1.3.12 (i)

अदृष्ट अवर वह परम द्रष्टा
वह अनन्त अचिन्त[3] औ अक्षर
वह अश्रुत[4] है, श्रोता, ज्ञानी
पर अनजाना है जग अंदर।

1.3.12 (ii)

जो ऐसा चिन्तन करता है
उसको ही वह अनुभव आता
भूतों का कारक, धारक औ
संहारक भी वह कहलाता।

1.3.13

ध्यान क्रिया द्वारा अनुभव हो
ऊँ ब्रह्म त्रैमात्रिक न्यारा
अपर[5] ब्रह्म ना, परमब्रह्म वह
पाप मिटें सब उसके द्वारा।

1.3.14

हिय नगरी में, कमल रूप में
सूक्ष्म नभ में वह सुस्थापित
ज्ञेय तत्व वह दहर कहाता
सकल जगत है उस में व्यापित।

1.3.15 (i)

सुषुप्ति अवस्था में जीवात्मा
ईश्वर 'सत' से मिलकर आता
असत लिप्तता के कारण से
आत्मा अनजाना ही रहता।

1.3.15 (ii) दोहा

आत्मा जाता दहर तक
सिद्ध यही उपदेश

दहर परम ज्ञातव्य है)

दहर ब्रह्म परमेश।

1.3.16 दोहा

सब लोकों को धारता

जिसको कहते दहर

शास्त्र कहें वह ब्रह्म है

सिमरो आठों पहर।।

1.3.17 दोहा

दहर कहें आकाश को

जिससे जीवन प्राण

इस बिन ना कोई जिये

अतः दहर भगवान।

1.3.18 दोहा

जीवात्मा भी दहर है

उचित नहीं अनुमान

लक्षण वर्णित जो हुए

आत्मा ना संज्ञान।

1.3.19

दहर बताएँ आत्मा को कुछ

आगे का पढ़ करके वर्णन

आत्मा शुद्ध स्वरूपी है पर

दहर ब्रह्म का ही सम्बोधन।

1.3.20 दोहा

कुछ ज्ञानी बोलें 'दहर'
जीवात्मा कर लक्ष
अन्य अर्थ में दहर है
'ईश' श्रुति है लक्ष।

1.3.21 दोहा

लघुतम को कहते दहर
पर नहीं यह आत्मा
वर्णन पहले भी किया
दहर है परमात्मा।

1.3.22

जीवात्मा के पीछे पीछे
परमात्मा भी खुद चलता है
लघुतम ईश्वर, जीवात्मा संग
हिय अंदर आकर मिलता है।

1.3.23

स्मृति, ज्ञान रूपी आध्यात्मिक
ग्रन्थों में भी मिलता वर्णन
सर्वव्यापक औ सर्वेश्वर
हिय के अंदर रहता भगवन्त।

1.3.24

नाप बनाकर अंगूठे सा
ईश्वर सबके हिय में रहता

पूर्व कहे अनुसार वही है
सारे जग पर शासन करता।

1.3.25

अंगूठे का नाप बनाकर
मानव हिय में ईश्वर स्वारी
इस कारण ही केवल मानव
ब्रह्मज्ञान का है अधिकारी।

1.3.26

मानव से ऊँची हर योनि
ब्रह्मज्ञान कर सकती सेवन
यह पूर्वज कर्मों का फल है
ऐसा कहते श्रेष्ठ 'बादरायण'।

1.3.27 (i)

देवों की पूजा करने पर
ऐसी शंका भरमाएगी
भिन्न जगहों से क्यों, कैसे
भेंट देवता तक आएगी।

1.3.27 (ii)

देव सभी कायाधारी सम
एक जगह पर ना टिकते हैं
अपने को करके विग्रहित
सर्वव्यापक वे रहते हैं।

1.3.27 (iii)

इस कारण से एक साथ ही
जितने भी साधक हवि देते
उन सब साधकगण की सारी
देव हर्विहुतियाँ ले लेते।

1.3.28 (i)

देवों को जो देही बोलें
उनका जन्म, मरण भी होगा
नित्य नहीं फिर वे होवेंगे
श्रेष्ठ ज्ञान ना सम्यक होगा।

1.3.28 (ii)

प्रत्यक्ष अवर अनुमान सिद्ध है
और उचित भी लगता चिन्तन
कल्पारम्भ समय जब आता
ब्रह्म रचाता सभी देव गण।

1.3.29

कल्पारम्भ समय ईश्वर ही
जगत रचे वेदों अनुसार
नित्य वेद फिर प्रकटाता वह
रचता ना फिर फिर करतार।

1.3.30 (i)

सकल देवता जिन कार्यों का
कल्प पूर्व करते हैं पालन

कल्पान्तर पर वे ही कारज
फिर से करते हैं संचालन।

1.3.30 (ii)

ऐसा ही यह ज्ञान जगत में
श्रौत स्मार्त ग्रन्थों में आया
सब देवों का नाम रूप भी
पहले वाला ही बतलाया।

1.3.31

जैमिनी के मत में मधुविधा[6]
देवों को है ना आवश्यक
देव स्वयं पूजित होते हैं
वे क्योंकर बन जाएँ पूजक।

1.3.32

ज्योतिर्मय लोकों के अंदर
ऐश्वर्य प्राप्त देव रहें जब
ब्रह्मज्ञान उनको पूरा है
बिन इच्छाओं के रहते सब।

1.3.33 (i)

बादरायण इन भावों से
किंचित् भी ना सहमत लगते
श्रुति वचन से उधृत करके
पूज्य ऋषिवर ऐसा कहते।

1.3.33 (ii)

शास्त्रों के अनुसार देव सब
यज्ञ, याज्ञ को नियमित करते
और देवतागण सारे ही
ब्रह्मज्ञान से पूरित रहते।

1.3.34

जानश्रुति नृप दो हंसों से-
घोर अनादर सुन घबराए
ब्रह्मज्ञान पाने के हित वह
रैक्व ऋषि आश्रम में आए।

1.3.35 (i)

क्षात्र तेजयुत जानश्रुति थे
दान बहुत करते रहते थे
चैत्ररथ आदिक ब्रह्मचारी
उनके घर भोजन करते थे।

1.3.35 (ii)

रैक्व ऋषि ने नृप को देखा
जिसमें क्षोभ[7] बहुत था छाया
क्षोभ देख करके राजा का
ऋषि ने उसको शूद्र[8] बताया।

1.3.35 (ii)

शूद्र नहीं थे वह करते थे
सब अच्छे लोगों से प्यार

किया हुआ था क्षोभ तभी तो
ऋषि किया ऐसा व्यवहार।

1.3.36[2]

जिस भी मानव का पहले से
उपनयन संस्कार नहीं हो
वेदों को पढ़ने का उसको
कोई भी अधिकार नहीं हो।

1.3.37

शिष्यों में कोई शिक्षार्थी
शूद्र नहीं हो यही सोचकर
हर गुरुजन का यह निर्णय है
ज्ञान कृपा ना हो शूद्रों पर।

1.3.38

श्रौत स्मार्त सब ग्रन्थ कहें यह
शूद्र कहीं हों नर या नारी
वेद श्रवण, अध्ययन, पठन औ
अर्थज्ञान के ना अधिकारी।

1.3.39

अंगूठे का नाप बनाकर
सबके हिय में ईश्वर रहते
देव सभी उससे अनुशासित
अपना अपना कारज करते।

1.3.40

परम ब्रह्म से ज्योतित होते
सूर, चंद्र औ तारे सारे
ज्योति नहीं है उनमें अपनी
दिखते चाहे न्यारे न्यारे।

1.3.41 (i)

आकाश जिसे बतलाया है
व्याप्त रहे वह सब के अंदर
वह र्विहण सबका करता
औ कहलाता वह है ईश्वर।

1.3.41 (ii)

नाम रूप ये गुणधारी सब
रहते हैं उसके अन्तर्गत
परमब्रह्म है उसको ही तो
श्रुतियाँ कहतीं आत्मा अमृत।

1.3.42 (i)

सुषुप्ति तथा उत्क्रान्ति समय
आत्मा, 'सत', ईश्वर में रहता
परमात्मा औ आत्मा दो हैं
ऐसा ही शास्त्रों में आता।

1.3.42 (ii)

आत्मा, परमात्मा ये दो हैं
आकाश 'ईश' हित उदबोधन

आत्मा का भी यह सूचक है
ऐसा कोई भी ना कारण।

1.3.43

जीवात्मा औ ईश्वर दो हैं
आत्मा पर ईश्वर का शासन
ईश्वर परम श्रेष्ठ पतियों में
जगत पिता वह है अवधारण।

॥ इति अध्याय एक, पाद तीन ॥

संदर्भ :

1. भूमा = सबसे बड़ा
2. अक्षर = जिस का क्षय नहीं होता
3. अचिन्त = जो चिन्तन में नहीं आता
4. अश्रुत = जो सुनाई नहीं देता
5. अपर ब्रह्म = जीव समुदाए के नमित हिरण्य गर्भ रूप
6. मधुविधा = छांदोग्य में सूरज को मधु कहा है। उसकी पूजा विधि मधु विद्या है।
7. क्षोभ = व्याकुलता, जिसमें क्षोभ हो वह शूद्र है।
8. शूद्र = वह है जिसका बौद्धिक विकास नहीं हो, विक्षिप्त हो, असमाजिक हो।

अध्याय - एक
पाद - चार

विषय सूची

- सबसे पहले असत की सत्ता थी। ईश्वर ने फिर उससे सत प्रकटाया फिर दोनों से जगत की रचना की। 15
- ईश्वर प्रकृति से सूर्यादि रचना करते हैं स्वयं सूर्यादि नहीं बनते। जीवात्मा और इसका अधिष्ठान जड़ शरीर ईश के कर्म हैं। 16
- ईश्वर जगत की रचना करता है जीव नहीं। 17-26
- जीव और प्रकृति प्रलय समय ईश्वर में लय होते हैं और सर्ग समय फिर प्रकट होते हैं।
- ईश्वर जगत की रचना स्वयं करता है और स्वयं इस में प्रविष्ट हो जाता है। ईश्वर ही जगत का उपादान और निमित कारण है। 27
- मकड़ी की तरह वह अपना संसार रचता है फिर स्वयं उसका अंत करता है। 28

अध्याय - एक

पाद - चार

1.4.1 (i)

अव्यक्त शब्द है कठ के अंदर
कारण काया के हित आया
कारण काया रथ है उस में
और रथी आत्मा बतलाया।

1.4.1 (ii)

सांख्य मतानुसार प्रकृति ही
जग का उपादान कारण है
वे कहते यह श्रुतियों का मत
पर यह अनुचित अवधारण है।

1.4.2

उपरोक्त कथन में रथ रूपी जो
कारण काया का वर्णन है
वह आत्मा को परम धाम में
पहुँचाने के हित साधन है।

1.4.3

प्रकृति स्वतः ही जगत रचाती
सांख्य शास्त्र यह है समझाता

वेद कहें यह ईश्वर आश्रित
जग को केवल ईश रचाता।

1.4.4 (i) दोहा

सांख्य कहे प्रकृति को
गुणधारी औ ज्ञेय
समझ पुरुष से पार्थक्य
मोक्ष (केवल्य) होय।

1.4.4 (ii) दोहा

वेदों में तो ज्ञेय है
परमेश्वर ही एक
उसका सब चिन्तन करें
उसकी लें सब टेक।

1.4.4 (iii) दोहा

वेद, सांख्य, प्रकृति प्रति-
रखते मत भिन्नता
वेद शब्द प्रमाण हैं
निर्विवाद श्रेष्ठता।

1.4.5

किसी श्रुति के अंदर ना है
प्रकृति ज्ञेय रूप में वर्णित
सब श्रुतियों में ज्ञेय ईश है-
जिससे सारे रक्षित पोषित।

1.4.6 दोहा

ईश्वर आत्मा अग्न हित
कठ में पूछे प्रश्न
ये तीनों ही ज्ञेय हैं
छुआ ना अन्य प्रकरण।

1.4.7 (i) दोहा

'महत[1]' शब्द को सांख्य ने
बोला है महत्तत्व[2]
पर कठ में इस महत को
कहते आत्मिक तत्व।

1.4.7 (ii)

इसी तरह 'अव्यक्त' शब्द से
परमेश्वर ही दर्शाया है
किसी श्रुति में भी प्रधान हित
यह सम्बोधन ना आया है।

1.4.8 (i)

'अजा' शब्द से श्वेताश्वतर में
जग रचनाकर ईश्वर वर्णित
सांख्य मत अनुसार 'अजा' से
प्रकृति होती केवल चित्रित।

1.4.8 (ii)

जैसे 'चमस' सोम पीने हित
पात्र विशेष कहा जाता है

वृहदारण्यक इसी चमस को
शिर के हित में बतलाता है।

1.4.9 (i)

तेज आदि त्रिविध[3] तत्वों की
त्रिविध तेज आदिक तत्वों की
'अजा' शब्द से उसी शक्ति हित
छान्दोग्य करे, सद् अभिव्यक्ति।

1.4.9 (ii)

इस शाखा वाले शास्त्रों में
ऐसा ही चिन्तन मिलता है
सांख्यों का 'प्रधान' वहाँ पर
'अजा' शब्द में ना दिखता है।

1.4.10

मधु शब्द के द्वारा जैसे
सूर्य देव का होता चित्रण
वैसे त्रिविध अनादि शक्ति का
'अजा' नाम से होता चिन्तन।

1.4.11 (i)

सांख्य शास्त्र में तत्वों का औ
स्वतंत्र प्रधान का चिन्तन है-
वेदों के अंदर ना ऐसा
उनमें परमेश्वर मंथन है।

1.4.12 (i)

वृहदारण्यक के मंत्रों में
मंत्र उपरांत जो हैं वर्णित
प्राणादिक शक्ति केंद्रों का
पूरा दर्शन वह है विधिवत।

1.4.12 (ii)

प्राण, श्रोत्र, आँखों, मन के जो
प्राण, श्रोत्र, आँखें, मन जाने
परम पुरुष को वही श्रेष्ठ नर
सच्चे अर्थों में पहचाने।

1.4.13

कण्व मतानुसार तत्वों में
अन्न नहीं जोड़ा जाता है
ज्योति तत्व को जो जोड़ें तो
घाटा पूरा हो जाता है।

1.4.14

जग रचने का क्रम श्रुतियों में
एक समान नहीं मिलता है
पर सबका निष्कर्ष यही है
परमेश्वर ही जग रचता है।

1.4.15

प्रथम असत की ही सत्ता थी
फिर उससे ही सत प्रकटाया

असत अवर सत रचना द्वारा
ईश्वर ने ही जगत रचाया।

1.4.16 (i)

सूर्य आदि सोलह पुरुषों का
'कौषीतकी' में वर्णन आया
वहाँ ऋषिवर ने इन सबको
परमेश्वर का कर्म बताया।

1.4.16 (ii)

आत्मा औ इसकी जड़ काया
ईश्वर के ही कर्म कहाते
जड़ इनको कैसे रच सकता
परमेश्वर ही उन्हें रचाते।

1.4.17 (i) शंका

जीव नमित औ मुख्य प्राण हित
जितने भी लक्षण समझाए
उनसे यह शंका उठती है
ब्रह्म नहीं, जग जीव रचाए।

1.4.17 (i)

जीव जगत की रचना करता
जो ज्ञानी ऐसा बतलाते
चिन्तन धारा उनकी अनुचित
पूर्व सूत्र भी यह समझाते।

1.4.18 (i)

जैमिनी करते अन्य[4] अर्थ में
प्राण तथा आत्मा की व्याख्या
पूर्व कथन का निराकरण[5] कर
समझाते जग ईश रचाया।

1.4.18 (ii)

प्राण जीव सब प्रलय समय में
परमेश्वर में लय हो जाते
और जगत की जब रचना हो
ईश्वर इनको फिर प्रकटाते।

1.4.19

पूर्वापर सूत्रों के द्वारा
जीव प्राण का जो वर्णन है
अर्थ यही उससे निकला कि
ईश्वर करता जग सिरजन है।

1.4.20 (i)

प्राण तथा जीवात्मा लक्षण-
सोचें तो निष्कर्ष निकलता
सारे ही जग का कारण तो
केवल परमेश्वर हो सकता।

1.4.20 (ii)

प्रतिज्ञा[6] हित अजात शत्रु ने
ईश्वर का यह काज बताया

'आशमरथ' भी ऐसा कहते
औ शास्त्रों में भी यूं आया।

1.4.21 (i)

ब्रह्मज्ञान जिसने पाया है
वह जब जीवन तजकर जाता
परमेश्वर में लय वह होता
जो यह सारा जगत रचाता।

1.4.22 दोहा

प्रलय समय में जगत को
लय करते हैं ईश
काशकृतस्त्र वचन हैं
जग रचते जगदीश।

1.4.23 (i) दोहा

छान्दोग्य में वर्णित है
पिता, पुत्र संज्ञान
उपादान औ नमित भी
कारण हैं भगवान।

1.4.23 (ii) दोहा

प्रतिज्ञा औ दृष्टांत से
बाधित ना 'यह वाक्य'
जग रचते पर-ब्रह्म ही
जो सबको है प्राप्य।

1.4.24 दोहा

श्रुतियों से यह स्पष्ट है
विद्वानों का ज्ञान
उपादान कारण स्वयं-
जग के हैं भगवान।

1.4.25 दोहा

उपादान कारण अवर
निमित भी परमेश
श्रुति यही वर्णन करे
स्पष्ट करे उपदेश।

1.4.26 दोहा

ईश्वर अपने आपको
प्रकटे कर बहु रूप
जिस कारण यह जग बने
जिसका रूप अनूप।

1.4.27

स्वयं हुआ परिणित परमेश्वर
भिन्न भिन्न रूपों को धरकर
रूप सजाकर सारे वह फिर
रहता है वह सबके भीतर

1.4.28

सारे भूतों की वह योनि
उपादान कारण कहलाता

जाल रचाकर मकड़ी सम वह
स्वयं उसे ही फिर खा जाता।

1.4.29

जो जो प्रश्न उठाए जाते
इस जग की रचना को लेकर
उन सब प्रश्नों का संक्षेपित
दिया यहां पर समुचित उत्तर।

॥ इति अध्याय एक, पाद चार ॥

संदर्भ

1. महत = बड़ा
2. महतत्व = बुद्धि
3. त्रिविध तत्व = तेज, जल, अन्न।
4. अन्य अर्थ = जन्म, मरण के अर्थ में नहीं
5. निराकरण = ठीक गलत का निर्णय करना
6. प्रतिज्ञा = अताजशत्रु ने प्रतिज्ञा की थी कि वह ब्रह्म का स्वरूप दिखाएगा।

अध्याय - दो
पाद - एक

विषय सूची

- यह शंका निराधार है। क्योंकि सांख्य, प्रधान को जब बिन अव्यय, अग्राह्य और अव्यक्त मानता है तो अपने से भिन्न की उत्पति नहीं हो सकती इस बात का स्वयं खंडन करता है। 9-10
- वेद विरोधी तर्कों को न मानो, मोक्ष मार्ग से विचलित हो जाओगे। 11-12
- शंका-ब्रह्म अगर जग का कारण है तो वह सब भोगों का भोक्ता भी हुआ। इस प्रकार ईश्वर, आत्मा और जड़ की एकरूपता होगी जो ठीक नहीं। 13
- ईश्वर, आत्मा और प्रकृति अलग अलग हैं, पर प्रकट होने से पहले जगत ईश्वर में स्थित था, ईश रूप था। 14
- ईश्वर जगत का कारण है और जगत कार्य। 15-18
- जैसे वस्त्र में सूत है वैसे ही जगत में ईश्वर है। 19
- शरीर से निकलने पर भी प्राण की सत्ता होती है। 20
- परमेश्वर जीव रूप में प्रकट होता है जो सारे सुखों का भोक्ता है। 21
- जो भी जीव जगत में आता है वह ब्रह्म नहीं होता। ब्रह्मजीव नहीं है। 22-23
- ईश्वर 'पर' शक्ति का मालिक है और बिना किसी सामग्री के संसार रचता है। 24
- ईश्वर और सब देवता अपने अपने संकल्पों के कारण कार्य करते हैं। 25
- एक शंका उठती है कि ईश्वर अगर जग रचता है तो वह अपने से रचता है अतः ईश्वर व्यय भी हो सकता है। (शंका) 26
- श्रुति इसके लिए कहती है ईश्वर दोष रहित है और बिन अव्यय है। 27
- इसी तरह आत्मा भी स्वप्न अवस्था में सृष्टि की रचना करती

है पर इसका कोई व्यय नहीं होता। 28

- जगत रचना के लिए सांख्यी जो दोष ईश्वर में गिनाते हैं, वही दोष प्रकृति में आ जाएंगे अगर प्रकृति को जगत की रचना करने वाला मानें। 29
- ईश्वर ही सब शक्तियों की खान है। 30
- ईश्वर बिना इन्द्रियों के और बिना मन के जग की रचना करता है। 31
- ईश्वर का जग रचने का कोई हेतु नहीं है। वह बिना किसी हेतु जग रचना की लीला करता है। 33
- ईश्वर किसी से भेदभाव नहीं करता सबको कर्मों के अनुसार फल मिले, इसकी व्यवस्था करता है। 34
- कर्मों के फल निश्चित मिलते हैं। यही ज्ञान सब जगह है। 35-36

अध्याय - दो

पाद - एक

2.1.1 (i)

कुछ ज्ञानी पुरुषों का मत है
जड़ प्रकृति ही जग का कारण
अगर नहीं ऐसा माना तो
सांख्य शास्त्र की है अवमानन।

2.1.1 (ii)

पर ऐसा कहना अनुचित है
तर्कों पर ना आधारित है
परमेश्वर ही जग का कारण
अगणित शास्त्रों का यह मत है।

2.1.2 दोहा

वेदों में वर्णन नहीं
जगत रचे प्रधान
अन्य श्रुतियाँ भी नहीं
देतीं ऐसा ज्ञान।

2.1.3 दोहा (पातंजली शास्त्र का खंडन)

योग शास्त्र 'जड़' हित कहे
करती जग निर्माण
पूर्वापर के तर्क भी
खंडित करते ज्ञान।

2.1.4 (i) शंका (सांख्य मत) दोहा

ब्रह्म को चेतन कहा
प्रकृति जड़ता रूप
कार्य, कारण अनन्यता[1]
नहीं तर्क अनुरूप।

2.1.4 (ii) दोहा

प्रकृति जड़ है और यह
रचती जड़ संसार
चेतन ना जड़-जग रचे
यही सांख्य अनुसार।

2.1.5 दोहा

अन्न, मेघ जड़ में रहें -
शक्ति रूप में देव
ब्रह्म नहीं जग को रचे
जग रचते ये देव।

2.1.6

उपादान से भी पैदा हों
जग में चीजें बहुत विलक्षण

जैसे मानव सम जीवों में
जड़ नरव आदिक होते उत्पन्न।

2.1.7 (i)

अव्यय-ईश्वर के बिन ही जो
पैदा हो जड़ चेतन सारा
प्रश्न उठेगा सत[3] आया है
असत[4] किसी यों सत्ता द्वारा।

2.1.7 (ii)

अप्रकटित जड, चेतन दोनों
परमेश्वर में जाकर रहते
और उसी की अनुकम्पा से
फिर रूपों में ये सब सजते।

2.1.8 शंका

प्रलय समय में ब्रह्मलीन हो
अपने दोषों को जग लेकर
उचित नहीं लगता यह कहना
दोष रहित फिर भी परमेश्वर।

2.1.9 समाधान

पूर्व सूत्र में जो शंका है
उस शंका का कारण अनुचित
कितने दृष्टांतों के द्वारा
निराकरण यह होता अधिकृत।

2.1.10 (i)

सांख्य कहे प्रधान बिन अव्यव
अव्यक्त, अग्राह्य, अव्यवहारी
अपने से फिर भिन्न जगत का
कैसे होवे रचनाकारी।

2.1.10 (ii) शंका

कारण से कार्य भिन्न हो
दोष यहाँ भी यह आएगा
असत किसी से, सत उपजा है
जिसको गलत कहा जाएगा।

2.1.11

तर्कों में रहती अस्थिरता
अनुमानों में अंतर रहता
वेद विरोधी अनुमानों से
मोक्ष किसी को भी ना मिलता।

2.1.12

श्रुति विरुद्ध सारे धर्मों का
किया यहाँ पूरा खंडन है
जो जो भी शंकाएँ आईं
किया सभी का निराकरण है।

2.1.13 (i) शंका

ब्रह्म जगत का कारण है तो
वह भोगों का होवे भोक्ता

जीव ब्रह्म इन दोनों में फिर
कोई भी ना अंतर रहता।

2.1.13 (ii)

इस चिन्तन अनुरूप जगत में
जड़ जीवों में ना हो अन्तर
पर जड़, आत्मा, ईश्वर तीनों
भिन्न गिनाए श्रुतियों अंदर।

2.1.13 (iii) समाधान

पुत्र पिता द्वारा पैदा हो
जो निज सुख, दुःख का अधिकारी
जनन समय की सब पीड़ाएँ
पर बेटा ही, झेले सारी।

2.1.13 (iv)

ईश्वर जीव तथा जड़ माया
भिन्न भिन्न सत्ताएँ सबकी
भोगों को जो ईश्वर भोगे
तीनों सत्ताएँ हों उसकी।

2.1.14

ईश रूप था जग भी पहले
फिर परमेश्वर से वह प्रकटा
कार्य जगत है कारण ईश्वर
ईश, जगत में स्पष्ट अनन्यता।

2.1.15

परमेश्वर है कारण जिससे
शक्ति रूप जग प्रकटा करता
शक्ति रूप परमेश्वर में ही
सदा, सर्वदा जग की सत्ता।

2.1.16 दोहा

कार्य सत है, वचन का
श्रुतियाँ हैं आधार
ईश-स्थित, अप्रकट था-
पहले यह संसार।

2.1.17 (i) शंका

पैदा होने से पहले जो -
जगत असत[1] था यह है वर्णन
सिद्ध नहीं हो कार्य जगत है
परमेश्वर है इस का कारण।

2.1.17 (ii) समाधान

श्रुति वचन कहते ईश्वर ही
धर्मान्तरण यह स्वयं रचाता
कार्य जगत की रचना के हित
अप्रकटित से जग प्रकटाता।

2.1.18 दोहा

व्यक्त नहीं था जब जगत
ईश्वर में था सत्य

यह पहले था ही नहीं
कहना पूर्ण असत्य।

2.1.19 दोहा

वस्त्र सूत में स्थित रहे
शास्त्रोचित संज्ञान
ईश्वर में जग भी रहे
उचित कहें विद्वान।

2.1.20 (i)

प्राणादिक जब तन से निकलें
दृष्टि पटल से ओझल रहते
अर्थ नहीं इस का यह किंचित –
ये कोई ना सत्ता रखते।

2.1.20 (ii)

प्रलय काल में ऐसे; ही तो
जग ईश्वर में रहता स्थापित
यह दिखने में ना आता था
इसकी पर थी सत्ता निश्चित।

2.1.21 शंका

जीव रूप में ब्रह्म प्रकटता
शास्त्र करें जब ऐसा वर्णन
सब सुख, दुख रच, खुद ही भोगे
कैसा उसका जग संचालन।

2.1.22

जीव जगत में जो भी आता
ब्रह्म नहीं वह वेद बताते
ब्रह्म जीव से बहुत उच्च है
एक नहीं ये दो कहलाते।

2.1.23 (i)

जैसे जड़ पत्थर आदिक को
कोई ना परमेश्वर कहता
वैसे ही आत्मा, ईश्वर की
अलग अलग ही होती सत्ता।

2.1.23 (ii)

जड़ माया का कारण ईश्वर
औ इसमें वह इसके अनुगत
जीव रचाए, जीव नहीं, वह -
रहता है सबके अन्तर्गत।

2.1.23 (iii)

ईश्वर जड़ चेतन का कारण
वह दोनों से भिन्न कहाता
हित अनहित से वह ऊपर है
और श्रेष्ठतम जाना जाता।

2.1.24 (i) शंका

घट आदिक के बनने के हित
सामग्री बहु होती वांछित

पर ईश्वर बिन साधन कैसे
जग की रचना करता पूरित।

2.1.24 (ii) समाधान

उपरोक्त कथन दोष युक्त है
ईश्वर पराशक्ति का मालिक
दूध दही जैसे बनता वह –
रचता जग वैसे स्वाभाविक।

2.1.25

संकल्पों से सकल देव गण
विविधा कारज करते सम्पन्न
इसी तरह से परमेश्वर भी
जगत रचाते हैं बिन साधन।

2.1.26 (i) शंका

ब्रह्म अगर जग का कारण है
और उसी ने जगत रचाया
पूरा ही या अंशी ईश्वर
जग में परिणित होकर आया।

2.1.26 (ii) शंका

दोष दिखेगा इसमें फिर यह
जगत बिना ना उसकी सत्ता
या वह परमेश्वर ऐसा है
जिसका अवयव भी हो सकता।

2.1.27 समाधान

इन दोषों हित श्रुति वचन हैं
दोष रहित रहता जगदीश्वर
दोष बिना वह, बिन अवयव है
और वही है जग रचनाकर।

2.1.28

दोष रहित औ निर-अवयव जो
आत्मा काया में आ रहता
स्वप्न अवस्था में वह भी तो
सृष्टि बहुत सी रचना करता।

2.1.29

जग रचना के हित में सांख्यी
जो ईश्वर में दोष गिनाते
प्रधान यदि रचता जग मानें
दोष वही उसमें आ जावें।

2.1.30 दोहा

परमब्रह्म जगदीश ही
हर शक्ति की खान
श्रुतियाँ यह वर्णन करें
यह उनका संज्ञान।

2.1.31 शंका/समाधान

करण बिना औ बिन मन ईश्वर
जग रचना कैसे कर पाया

ऐसी सारी शंकाओं का
समाधान पहले बतलाया।

2.1.32

हर कारज करने का कोई
कारण भी निश्चित ही रहता
पर यह जगत रचाने का तो
ईश्वर का ना कारण दिखता।

2.1.33

जग रचना करने में हेतु
परमेश्वर का ना रहता है
आप्तकाम पुरुषों सम वह तो
केवल लीला ही करता है।

2.1.34

परमेश्वर ना निर्दयी है
ना वह भेदभाव कुछ करता
कर्मों के अनुसार शुभाशुभ
स्वता सभी को फल है मिलता।

2.1.35 (i)

अगर कहो यह, सर्ग समय में-
केवल ईश्वर की थी माया
जीव नहीं थे कर्म नहीं थे
कैसे फिर जग विषम रचाया?

2.1.35 (ii)

सारा जगत अनादि तत्व है
कर्म तथा उनके फल निश्चित
जैसे नमक घुले पानी में
वैसे ईश्वर में सब स्थापित।

2.1.36

जीव तथा सब कर्मों का फल
अनादि अवर युक्ति संगत है
श्रोत, स्मार्त सारे ग्रन्थों में
ज्ञान यही सब प्रतिपादित है।

2.1.37

सगुण तथा निर्गुण जगती की
ईश्वर के कारण है सत्ता
सब धर्मों की उसमें संगत
वह ही सबकी रचना करता।

:: इति अध्याय दो, पाद एक ::

संदर्भ

1. कार्य और कारण में भिन्नता नहीं हो सकती = सांख्य का तर्क।
2. 2.1.6 यह सूत्र बतलाता है कि जैसे मनुष्य के नख, बाल आदि पैदा होते हैं वैसे ही ब्रह्म से जगत की उत्पति होती है।
3. सत = जिसकी सत्ता है, प्रकटित, व्यक्त
4. असत = अप्रकटित-अव्यक्त
5. आप्त काम = वीत रागी
6. 2.1.23 (ii) - वह जीवों की रचना करता है। वह जीव से भिन्न है। वह जीवों में रहता है।

अध्याय - दो

पाद - दो

विषय सूची

- कुछ लोग सोचते हैं जगत प्रधान ने रचा जो ठीक नहीं क्योंकि प्रधान जड़ है। 1
- प्रधान बिना चेतन के रचना नहीं कर सकता। 2
- गाय के थनों से दूध उतरना और नदियों में जल बहने की तरह जड़ प्रकृति का सृष्टि रचना सम्भव है, ऐसी सोच ठीक नहीं। अकेले जड़ से यह सम्भव नहीं हो सकता, चेतन की आवश्यकता है। 3
- प्रधान अगर जगत का सहज निर्माण करता है तो प्रलय समय मिट कैसे जाता है। 4
- गाय का घास खाकर दूध देना ईश्वर की कृपा है। 5
- अगर प्रधान को जगत रचने वाला मानें तो इसका हेतु क्या है? समझ नहीं आता। 6
- चेतन ही दो वस्तुओं को साथ लाता है अपने आप वे साथ नहीं आतीं। 7
- गुणों की साम्य अवस्था कैसे भंग होती है? यह पुरुष के कारण होती है। इसलिए पुरुष निष्क्रिय नहीं है। 8
- प्रधान में ज्ञान नहीं तो यह सुंदर जगत रचना कैसे करता है?

9

- सांख्य की बहुत सी बातें आपस में मेल नहीं खातीं। 10
- परमाणुवाद का खंडन। 11-17
- बौद्धमत का खंडन। 18-32
- बौद्धमत बाह्य और अन्तर समुदाय मानता है। ये पाँच समुदाय हैं - रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा और संस्कार। ये सब अस्थाई हैं, क्षणिक हैं। अत: जग रचना नहीं कर सकते। 18
- अविद्या, संस्कार, विज्ञान आदि एक दूसरे के कारण हैं। ये घटी यंत्र की तरह चलते हैं। इनसे समुदाय की सिद्धि नहीं हो सकती। पर बौद्ध मत कहता है संधात यही समुदाय करते हैं। 19
- अविधा - क्षणिक वस्तुओं में नित्यता का भाव ही अविधा है।
- बौद्ध मत के अनुसार जब कोई भाव उदित होता है तो पहले के सब कारण नष्ट हो जाते हैं पर आभूषण में स्वर्ण रहता है और घट में मिट्‌टी अत: बौद्ध मत गलत है। 20
- बौद्ध मत के अनुसार जन्म मरण का क्रम टूटता नहीं। वे प्रलय का अस्तित्व नहीं मानते। 22
- जगत के सब पदार्थ असत्य हैं अविद्या के कारण स्थिर लगते हैं। अगर यह मान लिया जाए तो ज्ञान और उसके साधन का उपदेश व्यर्थ होगा। 23
- बौद्ध मत वाले आकाश की सत्ता नहीं मानते जो गलत है। 24
- आत्मा पूर्व घटित घटना को याद रखती है इसलिए आत्मा क्षणभंगुर है और असत है, यह चिन्तन गलत है। 25
- असत पदार्थ से कोई सत की रचना कैसे कर सकता है। 26
- बौद्ध मत वाले मानते हैं कि बिना चेतन के सब कार्य हो जाते हैं, जो ठीक नहीं। 27
- जो वस्तु हम जान सकते हैं या जो अनुभव में आता है, वह

असत नहीं। 28

- स्वप्न में जो दिखाई देता है वह सत्य नहीं होता जाग्रण की अनुभूति सत्य होती है। 29
- बुद्धि भावों से, वासना से, संसार की रचना होती है। बौद्ध मत का यह सिद्धांत ठीक नहीं। 30
- बौद्ध मत वासना पैदा करने वाली बुद्धि को क्षणिक कहता है। इससे वासना का कोई अस्तित्व है, सिद्ध नहीं होता। 31
- बौद्ध मत का ज्ञान ठीक नहीं। 32
- जैन मत सबमें विरोधी धर्म मानता है, जो उचित नहीं (सप्त भंगी न्याय) मानते हैं जो ठीक नहीं। 33
- जैन मत में आत्मा शरीर के साथ घटता बढ़ता है। 34
- जैन मत में आत्मा घटती, बढ़ती है। इससे आत्मा में दोष दिखेंगे। 35
- शरीर का अंत समय का नाप ही आत्मा का असली नाप है। 36
- पशुपति मत में कहते हैं कि अपने आपको मुद्राओं से चिन्हित करो तभी मोक्ष मिलेगा। ईश्वर निमित है और प्रधान उपादान कारण। यह चिन्तन ठीक नहीं। 37
- पशुपति मत- जड़ रूपी जग से निराकार ईश्वर कैसे जग की रचना कर सकता है। 38
- ईश्वर निराकार है, अतः वह प्रधान आदि का अधिष्ठाता नहीं हो सकता। 39
- ईश्वर कुम्हार की तरह (जो मिट्टी से बर्तन बनाता है) जगत की रचना करता है। पर यह चिन्तन उचित नहीं क्योंकि ईश्वर निराकार है। नहीं तो वह भी कर्मानुसार भोग प्राप्त करेगा। 40
- अगर ईश्वर को शरीरधारी मानें तो उसका जन्म मरण होगा। 41
- ईश्वर जीव की उत्पति करता है, यह मानना उचित नहीं है

और वेद विरुद्ध है। 42

- आत्मा ही मन, इन्द्रियों की रचना करता है, अहं की रचना करता है, ऐसा पशुपति मत में बताते हैं, यह भी उचित नहीं। 43
- पंचरात्र नामक भक्ति शास्त्र में जीव की उत्पति का वर्णन और कर्ता से करण की उत्पति नहीं कही गई क्योंकि संकर्षण को, मन को, अहंकार को भगवान के अंग (अंश) माना गया है जो शास्त्र के अनुसार है। 44
- पंचरात्र शास्त्र वेद विरोधी नहीं। 45

अध्याय - दो

पाद - दो

2.2.1 दोहा

कुछ सोचें विद्वान यह
जगत रचे प्रधान
प्रधान जड़ है इसलिए
अनुचित यह अनुमान।

2.2.2 दोहा

जगत रचाने के निमित्त
कैसे जुटे प्रधान
चेतनता के बिन नहीं
कुछ होता निर्माण।

2.2.3

गाय-थनों से दुग्ध उतरता
औ नदियों में बहता है जल
प्रधान[1] ना ऐसे रच सकता
चेतनता का है इसमें बल।

2.2.4 (i)

साम्य अवस्था में से कैसे
प्रकृति रचा सकती संसार

खुद इसमें जब चेतनता ना
अतः उचित ना सांख्य विचार।

2.2.4 (ii)

जो यह मानें प्रधान स्वतः ही
जग निर्माण सहजता करता
प्रलय बाद यह प्रकटे कैसे
और स्वयं वह कैसे मिटता।

2.2.4 (iii)

इस कारण निष्कर्ष यही है
जगत प्रधान नहीं रच सकता
जग की रचना को तो केवल
अव्यक्त परम की रचती सत्ता।

2.2.5 (i) दोहा

ब्याहता गाय घास खा
स्वतः दुग्ध ना देती
अनुकम्पा है ईश की
गाय ऐसा करती।

2.2.5 (ii) दोहा

कितने ऐसे और हैं
जो खाते तृण, मूल
उनसे ना सम्भव बने
यही सांख्य की भूल।

2.2.6 दोहा

जगत रचे स्वभावत:
मानें अगर 'प्रधान'
पर रचने का हेतु क्या
मिलता ना यह ज्ञान।

2.2.7 (i) दोहा

पंगु अंधे से मिले
पहुँचे अपने स्थान
चुम्बक से लोहा खिचे
प्रधान करे यूँ काम।

2.2.7 (ii) दोहा

चेतन, पहले वस्तु को
लाता निश्चित स्थान
फिर समीपता से बनें
ना प्रधान का काम।

2.2.8 (i)

तीन गुणों की साम्य अवस्था
यह प्रधान है रहती होकर
अंग अवर अंगी बनते गुण
कोई कारण ना किंचित भर।

2.2.8 (ii)

अंग अवर अंगी गुण ना हों
ना होगा फिर जग रचनाक्रम

सांख्य सिद्ध ना होगा इससे
केवल इससे आएगा भ्रम।

2.2.9

अगर गुणों की साम्य अवस्था
कुछ कारणवश अस्थिर होती
ज्ञान बिना ही प्रकृति कैसे
सुंदर सा यह जगत रचाती।

2.2.10

सांख्य शास्त्र की कितनी बातें
मेल नहीं आपस में खातीं
एक वचन दूजे से उलटा
इस कारण ये भ्रम फैलातीं।

2.2.11

ह्रस्व अवर परिमंडल द्वारा
महत, दीर्घ औ जग बनता है
वैशेषिक मत का यह चिन्तन
केवल असमंजस रचता है।

2.2.12 (i)

प्रलय समय परमाणु सभी
बिन कर्मों के निश्चल रहते
फिर इनमें कम्पन होता है
जिस कारण ये जगत रचाते।

2.2.12 (ii) खंडन

क्या यह कम्पन्न स्वतः सम्भव
या होता संस्कारों कारण
ये दोनों कारण ना सम्भव
जग रचता परमेश्वर, चेतन।

2.2.13 (i) दोहा

परमाणु परमाणु बीच
समवायी[2] आधार
जगत रचें परमाणु ही
अनुचित पूर्ण विचार।

2.2.13 (ii)

वरणा होवे चतुर्दिक
अव्यस्था राज
जग रचना हित ईश ही
करता सारे काज।

2.2.14 (i) दोहा

जो मानें परमाणु का
प्रवृत्ति, निवृत्ति धर्म
प्रलय सदा होती रहे
या बनने का कर्म।

2.2.14 (ii)

इसका यह निष्कर्ष है
रचे ना जड़ संसार

जग को परमेश्वर रचे
यही वेद अनुसार!

2.2.15

नित्य नहीं परमाणु तथा रस-
रूप आदि इनका कोई गुण
दोष अनित्यता का है इनमें
कैसे करते फिर जगत जनन।

2.2.16

परमाणु सभी गुण रहित हैं
या मानें न्यूनादिक गुण युत
दोष रहेंगे इस कारण कुछ
अनुचित है परमाणुवाद मत।

2.2.17

कुछ शास्त्रों द्वारा वर्णित यह
परमाणुवाद स्वीकार नहीं
सद्पुरुषों ने ठुकराया है
यह वैदिक-मत अनुसार नहीं।

2.2.18 (i) दोहा (बौद्ध मत खंडन)

बाह्य तथा अंतर जगत
अणुओं का समुदाय
यही रचें पृथिवी, करण
बौद्ध धर्म बतलाए।

2.2.18 (ii)

ये समुदाय क्षण भंगुर हैं
विविध पदार्थ कैसे रचते
बौद्धों का यह मत अनुचित है
ईश्वर ही जग रचना करते।

2.2.19 (i)

विज्ञान, अविद्या[3] आदिक सब
बौद्ध जनन का कहते कारण
घटी यंत्र सम ये चलते हैं
समुदाय हित, ना ये साधन।

2.2.19 (ii)

पर विज्ञान, अविद्या आदिक
बौद्ध जनन का कहते कारण
जब समुदाय ना रच सकते
अनुचित है फिर बौद्धी चिन्तन।

2.2.20 (i) बौद्ध मत की मान्यता

बौद्ध कहें जब भाव उदित हों
पहले के सब मिटते कारण
अतः अविद्या आदिक ना हों
उत्तरोतर भावों के साधन।

2.2.20 (ii) खंडन

आभूषण में स्वर्ण रहे जब
घट में हो माटी का शासन

कारज में कारण रहता है

अनुचित है बौद्धों का चिन्तन।

2.2.21

बिन कारण के कार्य अगर हों

भंग प्रतिज्ञा[3] हो जाएगी

कार्य अवर कारण दोनों की

एक काल में सत्ता होगी।

2.2.22

बौद्धी मत में जनन, मरण का

क्रम न टूटे ऐसा चिन्तन

अप्रतिसंख्या[4] औ प्रतिसख्या[5]

सिद्ध नहीं होती अवधारणा।

2.2.23 (i)

जगत अविद्या कारण स्थिर है

ज्ञान मिले तो यह मिट जाए

प्रलय कल्पना ही अनुचित हो

प्रलय नहीं कोई भी आए।

2.2.23 (ii)

अगर कहीं हम यह मानें कि

ज्ञान मिले 'जग' खुद मिट जाता

बौद्धों के अनुसार ज्ञान फिर

बिलकुल ना आवश्यक रहता।

2.2.24 दोहा

भाव बिना आकाश है
सोचें बौद्धी लोग
भूतों का इस के बिना
होवे ना संयोग।

2.2.25 (i)

पूर्व घटित कोई भी घटना
याद अगर हो जाया करती
वह आत्मा जो याद रखे सब
क्षणिक कहीं, कैसे हो सकती।

2.2.25 (ii)

पर आत्मा हित बौद्ध कहें यह
क्षण भंगुर है और असत है
ऊपर के निष्कर्ष बताएँ
अनुचित उनका ऐसा मत है।

2.2.26

जिसका भी अस्तित्व नहीं हो
कार्य सिद्ध ना वह कर पाता
कभी किसी के द्वारा भी तो
ना ही ऐसा देखा जाता।

2.2.27 दोहा

सब हो जाएँ कार्य यदि
बिन चेतन उद्योग

निष्क्रियता में ही जियें
जग में सारे लोग।

2.2.28

जान सकें हम जो भी वस्तु
या जो भी अनुभव में आए
उसको फिर कोई भी कैसे
मिथ्या कह करके उलझाए।

2.2.29

स्वप्नों में जो कुछ भी दिखता
वह होता ना जाग्रत जैसा
जाग्रत की बातें सच्ची हैं
स्वप्नों में हो सब मिथ्या सा।

2.2.30 (i) दोहा (बौद्ध मत)

बाह्य मदद के ही बिना
धी रचती संस्कार
धी के ही संस्कार सब
जग के हैं आधार।

2.2.30 (ii) खंडन दोहा

जग में जो उपलब्ध वह-
भावों का आधार
पहले जब कुछ था नहीं
कैसे फिर संसार?

2.2.31 दोहा

जो धी प्रेरे वासना
वह खुद होती क्षणिक
सत्ता रखती वासना
सिद्ध ना इससे तनिक।

2.2.32

बौद्धों ने उपदेश दिए जो
बहुत अधिक हैं वे भ्रम मूलक
जो कुछ उन सबने सोचा है
उपादेय ना, ज्ञान निरर्थक।

2.2.33

सत्य पदार्थ में हो सकते
प्रकार भेद पर ना उलटे गुण
"विरुद्ध धर्म सब में रहते हैं"
यह अनुचित है जैनी चिन्तन।

2.2.34

देह बराबर आत्मा होती
जैनी करते ऐसा वर्णन
"आत्मा का कद विकसित होता"
अनुचित है यह जैनी दर्शन।

2.2.35

जैनी कहते क़ाया के संग
आत्मा भी है घटता, बढ़ता

दोष दिखेंगे जीवात्मा में
जो अविकारी निश्चित रहता।

2.2.36

नाप जीव का अन्त समय का
नित्य रहे यह भी वे कहते
आदि, मध्य में कैसे इसका
घटना औ बढ़ना बतलाते।

2.2.37 (i)

मुद्राओं से पशुपति मत में
जो अपने को चिन्हित करते
वे मानव ही जन्म, मरण के
चक्कर खाने से हैं छुटते।

2.2.37 (ii)

ईश निमित है और प्रधान
उपादान भी कहते कारण
अनुचित ही है, यह पशुपति मत
वेद विरोधी है यह चिन्तन।

2.2.38 (i)

'निराकार ईश्वर' जड़ जग से -
कैसे संयोगी हो सकता
पाशुपतों के मत अनुसार
जग रचना ना ईश्वर करता।

2.2.38 (ii)

पर परमेश्वर निमित तथा है
उपादान कारण बन रहता
वेदों में ऐसे आया है
जो निर्भ्रान्त सत्य कहलाता।

2.2.39

कुम्भकार सम सामग्री का
ईश अधिष्ठाता, आधार
तर्कों पर ना यह टिकता है
ना यह वेदों के अनुसार।

2.2.40

'ईश्वर' काया और करण युत
उचित नहीं ऐसा भी चिन्तन
फिर तो भोग आदि सब जग के
परमेश्वर के भी हों बन्धन।

2.2.41 (i)

पशुपतों को उचित कहें तो
ईश्वर का मरना भी होगा
जन्म, मरण संग कर्म-रती अरु
अल्पज्ञी जाना जाएगा।

2.2.42

निमित्त, उपादान ईश्वर है
पाँचरात्र, आगम अनुसार

वह संकर्षण[7] को भी रचता
इसका ना वैदिक आधार।

2.2.43

जैसे आत्मा की रचना का
कारण ना होता परमेश्वर
वैसे 'आत्मा' करण, अहं का
ना हो सकता रचनाकार।

2.2.44

परमेश्वर के षडविध गुण का
भाव लिए रहता संकर्षण
ऐसा माने, पाँच रात्र ना
वेद विरोधी बनता दर्शन।

2.2.45 (i)

पाँचरात्र में जीव अनादि
नित्य अवर अविनाशी चेतन
पर वेदों में निष्ठा ना थी
भक्ति शास्त्र किया सम्पादन।

2.2.45 (ii)

इसका यह निष्कर्ष नहीं है
अनुचित है वेदों का ज्ञान
वेद विरोधी पांचरात्र है –
ऐसा भी अनुचित संज्ञान।

॥ इति अध्याय दो, पाद दो ::

संदर्भ :

1. प्रधान = प्रकृति

2 (i). समवायी सम्बन्ध = ऐसा सम्बन्ध जिसमें चीजे अलग नहीं रह सकतीं, जैसे तंतु और कपड़ा।

2 (ii). समवाय सम्बन्ध = ऐसा सम्बन्ध जिसमें चीजे अलग-अलग रह सकतीं, जैसे घड़ा और रस्सी।

3. प्रतिज्ञा = बौद्ध मत में 4 हेतुओं से जग की सत्ता मानी गई। वे हैं इन्द्रियां, प्रकाश, मनोयोग, और विषय इन चार हेतुओं के होने से विज्ञान की उत्पति होती है। यही प्रतिज्ञा है।

4. अप्रति संख्या = Unconsious destruction (प्रलय) प्रतिसंख्या = Consious destruction

6. भाव = संस्कार उन्हीं चीज़ों से बनते हैं जिन की सत्ता हो पर बौद्ध यह नहीं मानते।

7. संकर्षण= वासना

अध्याय दो
पाद - तीन

विषय सूची

- आकाश का जन्म नहीं होता। 1
- आकाश की रचना ईश्वर ने की है। 2
- श्रुतियों में आकाश का जन्म जहाँ वर्णित है वह गौण है। 3
- आकाश नित है। 4-5
- ईश्वर ही आकाश है। 6
- श्रुतियाँ कहती हैं सब कुछ ईश्वर रचता है, आकाश भी। 7-8
- ईश्वर के बिना किसी में यह सामर्थ्य नहीं। 9
- जन्म का क्रम वर्णन किया है। 10-13
- भगवान भूतों की रचना जिस क्रम में करता है उनका विनाश उल्टे क्रम में होता है। 14
- संसार रचना का क्रम भिन्न-भिन्न शास्त्रों में भिन्न-भिन्न बतलाया है। यह सिर्फ समझाने के लिए है, कल्पित है क्योंकि वेदों में ऐसा कोई क्रम वर्णित नहीं। 15
- आत्मा पूरे शरीर में तद्रूप हो कर रहती है। 16-18
- शरीर के मरने पर किसी अन्य शरीर को धारण करती है या परलोक गमण करती है, पर यह नित्य है। 19-20
- जब आत्मा को गुणों से सुशोभित किया जाता है तो वे गुण ईश्वर के होते हैं। आत्मा के अपने गुण नहीं। 21

- आत्मा अणुरूप है। 22
- आत्मा शरीर में एक जगह रहती है और पूरे शरीर में भासित होती है जैसे चंदन की सुगन्ध सारे ज़ंगल में अनुभव होती है चाहे उसका स्थान एक जगह हो। 23-27
- आत्मा को विभु भी कहते हैं। 28
- अपने कारण शरीर में आत्मा तद्रूप होकर रहती है। 29-30
- आत्मा ईश्वर में ऐसे स्थित रहती है जैसे पौरुष बालक में। 31
- नवीन शरीर में आत्मा पूर्व संस्कारों से युक्त होकर रहती है। 32
- सांख्य प्रकृति को सृष्टि कर्ता कहता है जो वेदानकूल नहीं। 33
- शरीर के कार्यों का कर्ता आत्मा है। निद्रा में आत्मा अपनी इच्छा से रमण करता है। 34
- आत्मा का कर्तापन उसके पूर्व संस्कारों पर निर्भर करता है। 35-36
- सुख, दुःख किस क्रम में आएंगे वेदों में वर्णित नहीं। 37-38
- समाधि में मनुष्य का कर्तापन नहीं रहता। 39-40
- कर्मों की व्यवस्था भगवान करते हैं पर मनुष्य उनकी गति बदल सकता है। 41-42
- ईश्वर और आत्मा का रिश्ता पिता, पुत्र सा होता है। ईश्वर आत्मा के कार्यों से वैसे ही अलिप्त रहता है जैसे किरणों से सूरज। 43-47
- उचित, अनुचित कार्य काया की स्थिति पर निर्भर हैं। 48
- आत्मा अपनी कारण काया में प्रलय समय भी रहता है। 49
- आत्मा ईश्वर अंशी है। ईश्वर की व्यवस्था में रहता है। पूर्व कर्मों का फल किस क्रम में मिलेगा वेदों में वर्णन नहीं। 50
- आत्मा ईश्वर अंशी है तो फल की व्यवस्था कौन करता है? उत्तर है, ईश्वर। 51-53

अध्याय - दो

पाद - तीन

2.3.1 दोहा

व्यापक है आकाश औ
नित है इसका वास
जन्म रहित इसको कहें
श्रुतियों का विश्वास।

पाद - 3

2.3.2

तैत्तिरीय में दिया
पूज्य ऋषि ने ज्ञान
रचना की आकाश की
सर्वप्रथम भगवान।

2.3.3 दोहा

इससे होता भाव यह
जन्मा है आकाश
श्रुति वचन यह गौण है
गौण रूप आभास।

2.3.4 दोहा

दृगगत जो आकाश है
नित है उसका वास
श्रुतियाँ भी ऐसे कहें
बात कहें यह खास।

2.3.5

कहीं कहीं पर श्रुतियों में भी
गौण रूप में ईश्वर आया
इसी तरह से गौण अर्थ में
नभ रचना हित ईश बताया।

2.3.6 (i) दोहा

ईश्वर को आकाश से
अलग समझना भूल
ईश्वर ही आकाश है
समझ श्रुति अनुकूल।

2.3.6 (ii)

एक समझकर सबको जानो
उपनिषदों ने जो समझाया
वह नभ है, वह ही ईश्वर है
इसी तत्व को है दर्शाया।

2.3.7

जग की सारी रचनाओं का
श्रुति कहे ईश्वर है कारण

आकाश विलग ना इनसे है
इसमें इसकी भी अवधारणा।

2.3.8
पूर्व कहे से स्पष्ट हुआ है
ईश्वर ही आकाश रचाता
जिस के द्वारा इस जग में है
आशुग ने भी पाई सत्ता।

2.3.9
ब्रह्म अजन्मा और नित्य है
जगत रचाकर पाले हर पल
श्रुतियों से भी सिद्ध यही हो
और किसी में ना ऐसा बल।

2.3.10
ईश्वर ने की आशुग रचना
जिससे उसने तेज रचाया
तैत्तीरयक अवर बहुतेरे
शास्त्रों ने ऐसा समझाया।

2.3.11
ईश्वर ने आकाश रचा औ
फिर आशुग औ तेजस लाया
और इसी तेजस के द्वारा
इस जगती में 'जल' प्रकटाया।

2.3.12 दोहा

प्रथमत: आकाश रचा
क्रमश: आशुग, आप
फिर धरती श्यामल रची
(हरने को सब ताप)।

2.3.13

सब तत्वों का चिन्तन करके
स्पष्ट ज्ञान सारा हो जाता
ईश्वर अपनी अनुकम्पा से
सारा ही यह जगत रचाता।

2.3.14

रचना क्रम में और प्रलय की
शास्त्रों द्वारा ऐसी गणना
भूत यहां जिस क्रम में आए
उलटा क्रम हो उनका जाना।

2.3.15 (i)

जनन क्रिया हित कुछ कहते हैं
सबसे पहले ईश्वर आया
प्राण मनस औ करण तथा फिर
भूतों ने अस्तित्व बनाया।

2.3.15 (ii)

पर ऐसा कथनांक कहें जो
उनका यह चिन्तन अनुचित है।

वेदों में ऐसा कोई क्रम
कहीं नहीं मिलता वर्णित है।

2.3.16 (i)

ईश्वर अंशी अवर अजन्मा
'जीव', चराचर तन आश्रित है
तन अन्दर तद्रूप रहे यह
और इसी में सदा भ्रमित है।

2.3.16(ii)

गौण रूप में जनन, प्रलय, तन –
भावों से हो आत्मा भावित
'आत्मा' ना तन, ना यह बंधन
तन में भूला भटका सीमित।

2.3.16 (iii)

कल्प शुरू जब जब होता है
जीव स्वयं ईश्वर प्रकटाता।
पर कल्पान्त समय आने पर
यह ईश्वर में लय हो जाता।

2.3.16 (iv)

जीवों के जनने, मरने की
गौण रूप गाथाएँ आईं
वेदों ने फिर उपनिषदों ने
बातें यूं हमको समझाईं।

2.3.17

जीवात्मा का श्रुतियों अंदर
जन्म, मरण वर्णन ना आया
काया मरती आत्मा नित है
भाव यही सबने दर्शाया।

2.3.18

आत्मा ना जन्मा करता है
और कभी ना आत्मा मरता
इस गुण कारण से ही आत्मा
सर्वज्ञी है जाना जाता।

2.3.19

तन तज अन्य किसी तन अंदर
आत्मा फिर से आ जाता है
श्रुतियों में भी तो ऐसे ही
बार बार वर्णन आता है।

2.3.20

परलोक गमण करता आत्मा
पर फिर से तन धारण करता
सिद्ध यही हो इससे केवल
नित्य अमर हर आत्मा रहता।

2.3.21

श्रेष्ठ, महत्तम, व्यापक कहकर
श्रुतियाँ कहती अणु ना आत्मा

व्यापकता भी, अणु रूपी है
प्रासंगित केवल परमात्मा।

2.3.22

अणु शब्द शास्त्रों के अंदर
बहु छोटेपन हित वर्णित है
इसीलिए आत्मा शास्त्रों में
अणु नाम द्वारा परिचित है।

2.3.23 (i)

एक जगह पर रहकर चंदन
गंध चतुर्दिक में महकाता
इस वैज्ञानिक गुण के कारण
आत्मा पूरे तन में रहता।

2.3.23 (ii)

पूरे तन में फैला आत्मा
तन में एकरूप हो जाता
तन को जो भी सुख, दुख मिलते
वह इन सबका रहता ज्ञाता।

2.3.24

पर आत्मा के हित में सारी-
श्रुतियों में ऐसा वर्णित है
आत्मा काया अंदर हिय में
आ करके रहता स्थापित है।

2.3.25

जैसे दीपक अपनी लौ से
आलोकित करता पूरा घर
आण्विक आत्मा पूरे तन में
चेतनता को रखता भरकर।

2.3.26

गंध निकलकर फूलों से फिर -
चारों दिक् में होती अनुभव
आत्मिक गुण का पूरे तन में
यूँ ही स्थापित होना सम्भव।

2.3.27

जैसे गुणियों के सारे गुण
दूर दूर तक फैलें जाकर
वैसे नख, शिख से रौओं तक
तन में आत्मा फैले आ कर।

2.3.28

अणु बताकर जीवात्मा का
पूर्व सूत्र में है उद्‌बोधन।
अन्य स्थानों पर आत्मा का
विभु शब्द द्वारा सम्बोधन।

2.3.29

काया, धी, गुण, कारण, ईश्वर
अंगुष्ठ मात्र या अणु कहाता

इसी अपेक्षा के अनुरूपी
आत्मा भी यह जाना जाता।

2.3.30

भौतिक, सूक्ष्म, कारण तन में
जीव रहे उसके अनुसार
जीव स्वप्न में, मृत्यु प्रलय में
काया संग करे व्यवहार।

2.3.31

जैसे पौरुष बालक तन में
सुप्त बना रहता निसंशय
वैसे ही कारण तन आदिक
प्रलय समय तक रहते हैं लय।

2.3.32 (i)

पूर्वज संस्कारों को लेकर
आत्मा काया में आ रहता
इन सम्बन्धों के कारण वह
पूर्व ज्ञान फिर अर्जन करता।

2.3.32 (ii)

अगर नहीं यूँ सम्भव होता
या यह यूँ ही होता प्रेरित
विषयों में रत रहता हर पल
या अनुभव ना करता किंचित।

2.3.32 (iii)

तब आत्मा में गुह्य शक्ति या
विषय ग्राह्यता का है जो गुण
इन दोनों के सम्बन्धों का
करना होता सम्यक चिन्तन।

2.3.32 (iv)

अतः सकल इन सम्बन्धों हित
उचित शास्त्र का उद्‌बोधन है
अन्य सोचना भर अनुचित है
अन्य सोच का ना कारण है।

2.3.33

काया द्वारा जो कारज हों
वे कारज करता जीवात्मा
ओर नहीं कोई भी कर्ता
ना प्रकृति, ना ही परमात्मा।

2.3.34 दोहा

इच्छा से आत्मा करे
निद्रा में भी भ्रमण
सभी कर्म आत्मा करे
शास्त्र सिद्ध ये वचन।

2.3.35 दोहा

सकल करण निज साथ ले
आत्मा करता कर्म

आत्मा ही कर्ता हुआ
शास्त्रों का यह मर्म।

2.3.36

जीवात्मा को ही कर्मों का
श्रुतियाँ सब बतलाती कर्ता
अगर नहीं यह होता आशय
तो वे भी समझातीं उल्टा।

2.3.37 (i)

युगों युगों से कर्मों को कर
आत्मा जो संस्कार बनाता
उन संस्कारों के अनुरूपी
इच्छा बिन भी मग अपमाता।

2.3.37 (ii)

किस किस क्रम में सुख, दुख आते
नियम नहीं दिखता है जैसे
कर्मों को करने के हित भी
क्रमबद्ध नियम लगे ना वैसे।

2.3.38

आत्मा अपने कर्तापन से
करण अवर संस्कारों कारण
सारे हितकर और अहितकर
स्वयं कर्म करता संचालन।

2.3.39

पुरुष समाधित जब हो जाता
कर्म नहीं वह कोई करता
इस कारण उसका कर्तापन
अस्वाभाविक सा बन रहता।

2.3.40

जैसे शिल्पी कर्म करे सब
कई बार वह ना भी करता
वैसे ही आत्मा कर्मों का
कर्ता भी है और अकर्ता।

2.3.41

कार्य सभी ईश्वर करवाता
सबके हिय में स्थापित रहकर
श्रुतियाँ भी वर्णन करती हैं
ऐसे ही समुचित व्याख्या कर।

2.3.42 (i)

मानव के संचित कर्मों पर
कर्म सभी होते आधारित
पर आत्मा स्थित परमात्मा ही
कर्मों को करता संचालित।

2.3.42 (ii)

कर्म विवेक दिया ईश्वर ने
संस्कारों से पाने मुक्ति

अतः कर्म के संचालन में
दोषी ना ईश्वर की शक्ति।

2.3.43 दोहा

जीव ब्रह्म का अंश है
और ब्रह्म से भिन्न
कुछ कहते यह दास है
करे ब्रह्म का भजन।

2.3.44

वेद मंत्र यह हमें सुझाते
जीव ईश अंशी कहलाता
पर यह ना उसका टुकड़ा है
पिता पुत्र सम इनका नाता।

2.3.45

ईश्वर का अंशी आत्मा है
वेद मंत्र यह करते वर्णन
स्मार्त पुस्तकों में भी ऐसा
कई जगह मिलता है चिन्तन।

2.3.46 (i)

सूरज किरणें भू पर आकर
इस धरती पर सम्यक पड़ती
अच्छी और बुरी धरती का
किन्चित भी ना अंतर करतीं।

2.3.46 (ii)

किरणों के कारण से सूरज
लिप्त नहीं होता किंचित भर
वैसे ही आत्मा के कारज
लिप्त नहीं करते परमेश्वर।

2.3.47 दोहा

जीव ब्रह्म का अंश है
श्रुतियों के ये बोल
स्मार्त ग्रंथ पुष्टित करें
वचन बहुत अनमोल।

2.3.48 (i)

काया के सारे रूपों से
आत्माएँ होतीं सम्बन्धित
काया के अनुरूप सभी हों
अनुमति, निषेध से अनुबन्धित।

2.3.48 (ii)

जैसे नारियल उपयोगी है
पर ऐसा ना मानें वानर
ग्राह्य किसे हम मानें या ना
वह काया पर होता निर्भर।

2.3.49 (i)

पृथक पृथक आत्माएँ रहतीं
पृथक निजी 'कारण-तन' कारण

प्रलय समय भी ईश्वर में ये
ना कर सकतीं अपना मिश्रण।

2.3.49 (ii)

पृथक पृथक नभ में रहते हैं
जितने होते शब्द वहाँ पर
उसी तरह से सब आत्माएँ
रहतीं परमेश्वर के अंदर।

2.3.50 (i)

आत्माएं ना ईश्वर अंशी
अलग अलग इन को कुछ कहते
वेदों के अनुरूप नहीं यह
जैसा चिन्तन वे दर्शाते।

2.3.50 (ii)

उनके चिन्तन की यह धारा
ज्ञानी जन आभास बताते
आत्मा ईश्वर का अंशी है
श्रुति वचन ऐसा समझते।

2.3.51 शंका

जीव ईश का ही अंशी है
घटाकाश सम इसका वर्णन
अगर इसे मानें ऐसा तो
कैसे, कौन करे फल नियमन?

2.3.52 (i)

कौन जीव को तब दुख देगा
या दिलचाए सब सुख वैभव
संकल्पों इच्छाओं का भी
नियमन वैसे होगा सम्भव।

2.3.52 (ii)

ईश्वर ने संकल्प किया जो
जग सारा हो पाया निर्मित
यह सम्भव हो पाया क्योंकि
जग पूरा है ईश्वर अंशित।

2.3.53 (i)

सकल[1] व्यवस्थाओं[4] के हित में
उपाधि[5] भेद नहीं है साधन
परमेश्वर जो सब में व्यापक
वह उपाधि ना करता धारण।

2.3.53 (ii)

ईश अवर सब आत्माओं में
पिता पुत्र सा होता नाता
घटाकाश सम ये ना रहते
वेदों में भी ऐसा आता।

॥ इति अध्याय दो, पाद तीन ॥

संदर्भ :

1. शिल्पकार के कर्म जैसे अकर्म बन जाते हैं वैसे ही आत्मा कर्ता भी है अकर्ता भी।
2. अनुमति= स्वीकार करना
3. निषेध= अस्वीकार करना। शमशान की अग्नि - अस्वीकार है और यज्ञ की अग्नि - स्वीकार है।
4. सकल व्यवस्था= कर्म और कर्मों का फल देना आदि
5. उपाधि= नाम रूप

अध्याय - दो
पाद - चार

विषय-सूची

- इन्द्रियों की रचना ईश्वर करता है। 1
- शास्त्रों में जो इन्द्रियों का जन्म बताया है, वह गौणी वर्णन है। 2
- इन्द्रियों की रचना भूतों से पहले हुई। ईश्वर तीनों तत्वों (अन्न, जल, तेज) के अंदर आत्मा के साथ रहता है। ये सब तत्व इन्द्रियों की रचना नहीं करते। 3
- इन्द्रियों की गणना भिन्न भिन्न श्रुतियों में भिन्न भिन्न बताई है। 5-6
- सूक्ष्म-भूता तन्मात्राएँ भी ईश्वर रचित हैं। 7
- प्राण इन्द्रियों से श्रेष्ठ है। प्राण पूरे तन में रहता है। प्राण की रचना भी ईश्वर करते हैं। प्राण न वायु है, न वायु का स्पन्दन। प्राण दोनों से भिन्न है। 8-9
- प्राण जीव का एक उपकरण मात्र है। 10
- प्राण विषयों का उपभोग नहीं करता। 11
- प्राण आत्मा के लिए ऐसे ही है जैसे इन्द्रियाँ शरीर के लिए। 12
- प्राण सूक्ष्म है इसलिए अणु कहा गया है। 13

- तेज आदि तत्वों का रचयिता ईश्वर ही है। 14
- जीवात्मा ब्रह्म के साथ काया में रहता है। कई श्रुतियाँ जीवात्मा का इस प्रकार वर्णन करती हैं। 15-16
- प्राण इन्द्रियों से अलग है। 17-18
- स्वप्न तथा सुषुप्ति में सब इन्द्रियां निष्क्रिय रहती हैं। 19
- जल पृथ्वी और तेज का मिलाप करवाकर ईश्वर नाना रूपी संसार की रचना करता है। जिससे नाना रूपी संसार बनता है। 20
- अन्न भूमि रूप है वह मांस, विष्ठा और मन की रचना करता है। जल, रक्त, मूत्र और प्राण को रचाता है। तेज हड्डी मज्जा, श्रवण की रचना करता है। 21-22

अध्याय - दो

पाद - चार

2.4.1

जैसे नभ आदिक भूतों को
पैदा करते हैं जगदीश्वर
प्राण स्वरूपी सकल करण भी
वैसे ही रचते हैं ईश्वर।

2.4.2

करण जनन होना श्रुतियों में
गौणी अर्थों में है आता
जनन विषय के अंदर इनको
पूर्ण समाहित माना जाता।

2.4.3 (i)

पाँच भूत रूपी तत्वों को
ईश्वर ने ही सदा बनाया
और भूत रचने से पहले
सकल करण को स्वयं रचाया।

2.4.3 (ii)

अतः कथन यह स्वयं सिद्ध है
करण नहीं तेजादिक रचते
भूतों से भी पहले इनकी
परमेश्वर ही रचना करते।

2.4.4

तीनों तत्वों के अंदर आ -
जीव सहित हैं रहते ईश्वर
नाम रूप जग की रचना फिर
स्वयंमेव करते परमेश्वर।

2.4.5

शास्त्रों में इन्द्रीय गणन हित
भिन्न भिन्न गिनती है वर्णनित
सात इन्द्रियाँ वास्तव में हैं
सात प्राण जिनमें सुस्थापित।

2.4.6 शंका

सात इन्द्रियाँ केवल होतीं
यह तो है अनुचित सी गिनती
हाथ, पाँव इनमें जो जोड़ें
तो ग्यारह की गिनती बनती।

2.4.7

सूक्ष्मभूता तन्मात्राएँ
पूरा तन करतीं आच्छादन

इन सबकी रचना का भी तो
परमेश्वर ही केवल कारण।

2.4.8

श्रेष्ठ बहुत है प्राण करण से
पूरी काया में यह रहता
तन अंदर इसकी रचना भी
केवल परमेश्वर ही करता।

2.4.9

प्राण नहीं आशुग कहलाता
और नहीं इसका हो स्पंदन
प्राण पृथक है इन दोनों से
श्रुतियाँ करतीं ऐसा वर्णन।

2.4.10

नेत्रादिक सम प्राण जीव का
एक श्रेष्ठ उपकरण कहाता
सकल करण से प्राण श्रेष्ट है
पर यह भी जड़ जाना जाता।

2.4.11 (i) दोहा

विषयों के उपभोग में
प्राण नहीं है करण
श्रुति वचन ऐसा कहें
दोष रहित यह कथन।

2.4.11 (ii) दोहा

जीवात्मा हित प्राण है
जैसे तन हित करण
साथ चले यह जीव के
धारे तन या मरण।

2.4.12 दोहा

मन की वृत्तियां पाँच हैं
मन के सम है प्राण
इसमें प्राण अपान हैं
उदान समान व्यान।

2.4.13 दोहा

सूक्ष्मता को लक्ष कर
अणु[1] कहा है प्राण
स्थूल[2] पाँच वृत्तियां इसे
दें स्थूलता भान।

2.4.14 दोहा

ज्योति आदिक तत्वों का
परमेश्वर आधार
श्रुतियाँ बारम्बार यह
देती हैं सुविचार।

2.4.15

प्राणों से युत जीवात्मा के
हृदय में परमेश्वर रहता।

श्रुतियों में ऐसा ही वर्णन
कई जगह पर देखा जाता।

2.4.16

जीवात्मा जन्मा करता है
गौण रूप श्रुतियों में वर्णन
अविनाशी जीवात्मा तन को
ब्रह्म संग ही करता धारण।

2.4.17

करण तथा मन, इन ग्यारां से
मुख्य प्राण की रहे भिन्नता
गौण रूप में ही यह इनमें
श्रुतियों द्वारा जाना जाता।

2.4.18

प्राण करण का जब जब भी है
श्रुतियों अंदर वर्णन आया
मुख्य रूप में श्रुतियों ने तब
प्राण करण ना, यह समझाया।

2.4.19

स्वप्न सुषुप्ति दोनों में ही
निष्क्रियता में सकल करण हों
इस सबसे भी सिद्ध यही हो
प्राण भिन्न है, करण भिन्न हों।

2.4.20

पृथ्वी, बल औ तेज सभी का
परमेश्वर ही मेल मिलाता
त्रैतत्वों के मिश्रण द्वारा
नामरूप जग ईश रचाता।

2.4.21 (i) दोहा

भूमि रूप में अन्न है
तीन करे जो काम
मांस रचे, विष्टा रचे
और मनस (अविराम)।

2.4.21 (ii) दोहा

वैसे ही जल भी रचे
रक्त, मूत्र, औ प्राण
हड्डी, मज्जा, श्रवण का
करता तेज विधान।

2.4.22 दोहा

मिश्रण त्रै का जग रचे
एक रहे विशेष
भिन्न रूप जिस से सजें
संशय ना है शेष।

॥ इति अध्याय दो, पाद चार ॥

संदर्भ

1. प्राण अपनी वृतियों के साथ स्थूलता भी रखता है।
2. प्राण को अणु इसलिए कहते हैं कि यह सूक्ष्म है। यह भाव नहीं समझना चाहिए कि यह बहुत छोटा है।

अध्याय - तीन
पाद - एक

विषय-सूची

- आत्मा नए तन में सूक्षम तत्वों के साथ जाता है। सब सूक्ष्म तत्व शरीर के बीज रूप हैं। 1
- शास्त्र वीर्य में जल की अधिकता के कारण इस को जल कहते हैं। 2
- आत्मा शरीर त्याग कर प्राण में स्थित होकर, मन में विलीन इन्द्रियों को साथ लेकर, अन्यान्य लोकों में या नूतन तन में आती है। 3
- वृहदारण्यक में बतलाया है कि जब शरीर जलता है तो सब कुछ जल जाता है। यह वर्णन गौण है। 4
- प्रथम आहुति श्रद्धा को दी गई (छांदोग्य) इसलिए यह मानना कि जल जीवन संज्ञक नहीं, उचित नहीं है। वास्तव में द्युलोक आदि पाँच अग्नियों की कल्पना की गई है, उसमें देव श्रद्धा को होमते हैं वहाँ श्रद्धा जल ही है। 5
- आत्मा के साथ अच्छे और बुरे संस्कार जाते हैं। 6
- छांदोग्य में शुभकर्मी देवों का भोजन कहे गए हैं यह कथन गौण है। यह उस शुभकर्मी के लिए है जो आत्मज्ञानी नहीं इसलिए उसे कर्मों के फल भोगने पर फिर से जीवन धारण

करना पड़ता है।7

- स्वर्ग आदिक लोकों में आत्मा शुभ कर्मों के फल भोगकर वापिस जीवन में आती है। 8
- नया जीवन बचे हुए कर्मों के अनुरूप होता है। 9
- अगर शेष बचे कर्मों की गठड़ी अच्छे कर्मों की है तो उसे उनके अनुरूप जीवन मिलेगा। 10-11
- कौषीतकी में लिखा है कि मरने पर आत्मा चंद्र लोक में जाती है। इससे एक शंका उत्पन्न होती है कि बुरे कर्म करने वाले भी चंद्र लोक को प्राप्त होते हैं। 12
- यह शंका उपयुक्त नहीं। आत्मा अपने बुरे कर्मों के फल भोग कर चंद्र आदि लोकों को प्राप्त होती है। 13
- यम सबको उनके कर्मों के अनुसार फल देता है। 14
- सात प्रकार के तर्क हैं। जिनमें दुष्कर्मी बुरे कर्मों के फल भोगते हैं। 15
- यम लोक में यम का ही शासन है। 16
- शुभ कर्मों और ज्ञान क्रिया के कारण आत्मा को चंद्र आदि शुभ लोकों में रहना मिलता है। 17
- दुष्ट लोगों को बार बार जीवन धारण करना पड़ता है। 18
- सत्व गुणी ऊपर स्वर्गादिक लोकों में जाते हैं, रजस गुणी बार बार जीवन पाते हैं। तमस गुणी नरकों में जाते हैं। 19
- असुर लोकों में अंधेरा ही अंधेरा है। 20
- जीवन-तीन तरह से मिलते हैं अंडज से (अंडों से) जीवज (जेर आदि से) उद्भिज से जो जमीन से निकलते हैं। कुछ पसीने से पैदा होते हैं वे भी उद्भिज ही हैं। स्वर्ग से आने पर आत्मा पहले सूक्षम रूप फिर स्थूल-स्थूलतर रूप धारण करती है। 21-22
- आत्मा जब ऊपर जाती है तब भिन्न भिन्न लोकों से होती हुई

जाती है। उसकी वापसी की यात्रा सीधी जीवन में होती है। 23

- आत्मा नभ आदिक नहीं बनती केवल उन जैसी बनती है। 24
- अन्न पकाना और खाना पाप नहीं है ये मानव के स्वाभाविक भोजन है। 25
- आत्मा अन्न के साथ मिलकर वीर्य को साधन बना कर माता के गर्भ में आती है और नए जीवन को प्राप्त करती है। 26-27

अध्याय - तीन

पाद - एक

3.1.1

बीज रूप सूक्षम तत्वों युत
आत्मा करती है देहान्तर
छंदोग्य ने स्पष्ट किया यह
इसी विषय पर देकर उत्तर।

3.1.2 (i)

त्रै-तत्वों से सम्मिश्रित तन
बहुत अधिक जल इसमें रहता
प्राण स्वयं जल में स्थित होकर
नूतन तन को धारण करता।

3.1.2 (ii)

शास्त्र वीर्य को जल बतलाते
जल की बहुतायत के कारण
और इसी कारण कहते हैं
जल ही काया करता धारण।

3.1.3

करण सभी लेकर जीवात्मा
प्राण संग तन तजकर जाता
अपने संकल्पों अनुरूपी
कोई नूतन तन अपनाता।

3.1.4

अग्न आदि[1] में लय हो सब कुछ
बृहदारण्यक ने समझाया
सिद्ध नहीं यह होता चिन्तन
गौण रूप में केवल आया।

3.1.5 (i)शंका

श्रद्धा[2] की दी प्रथम आहुति
जल का इसमें ना है वर्णन
अतः उचित ना जल को कहना
जीवन संज्ञक रूपी कारण।

3.1.5 (ii)

जल जीवन संज्ञक कारण है
पूर्ण उचित है यह अवधारण
पूर्वापर में किया हुआ है
श्रद्धा कहकर जल संवादन।

3.1.6 (i)

आत्मा तत्वों को ले जाती
श्रुति वचन में ना यह आया

इस कारण यह उचित कथन ना
संशय भी इस कारण छाया।

3.1.6 (ii)

उसी प्रकरण में वर्णित है
अच्छे और बुरे का वर्णन
शुभ कर्मी पाएँ शुभ योनि
अधम योनियाँ पाएँ दुर्जन।

3.1.6 (iii)

ऊपर जो यह वर्णन आया
तत्व साथ ले आत्मा जाता
तत्व शब्द जल हित आया है
वीर्य वहाँ पर जल कहलाता।

3.1.7

स्वर्ग लोक जा दुष्कर्मी नर
देवों का भोजन बन जाते
अर्थ वहाँ पर सेवा हित है
देव कभी कुछ भी ना खाते।

3.1.8 (i)

स्वर्ग पुरी में जब अच्छे फल
क्षीण बहुत ही हो जाते हैं
जिस जिस मग से जो जो आए -
वापिस उस उससे जाते हैं।

3.1.8 (ii)

श्रुति स्मृति कहें आत्मा हित
जो ना ऐसा मग अपनाता
वह आत्मा फिर द्यौ लोक से
अन्य किसी मग से आ जाता।

3.1.9 (i)

श्रुति वचन में 'चरण[3]' शब्द है
उचित नहीं है यह अवधारण
अन-भोगे संस्कारों को ले
आत्मा अपनाती नूतन तन।

3.1.9 (ii) समाधान

चरण शब्द को वे ना समझें
जो करते हैं ऐसा चिन्तन
कार्ष्णव कहते नव जीवन
शेष बचे कर्मों का लक्षण।

3.1.10

चरण शब्द यूँ ही लिख डाला
उचित नहीं है ऐसा कहना
कर्माशय हित भी मानव को
शुभ कर्मों को होगा करना।

3.1.11 (i)

बादरिका अनुसार कर्म का
चरण शब्द उपलक्षण ना है

शुभ के हित रमणीय चरण है
कपूय-चरण बुरा करना है।

3.1.11 (ii)

इससे यह निष्कर्ष निकलता
आत्मा जब नव जीवन पाती
सब कर्मों के बचे हुए फल
अपने साथ स्वयं ले आती।

3.1.12 शंका

कोषीतकि अनुसार कभी भी
धरती से जो आत्मा जाती
शुभ कर्मी हो या दुष्कर्मी
चंद्र लोक में निश्चित आती।

3.1.13 समाधान

पापों का फल मिट जाता जब
चंद्र लोक में आत्मा जाए
शुभ कर्मी ही चंद्र लोक या
स्वर्गादिक लोकों में आए।

3.1.14 (i)

कर्मों के अनुसार सभी को
फल मिलते हैं यम के दर पर
इन बातों को स्मार्त ग्रन्थ भी
फिर फिर कहते हैं समझाकर।

3.1.15

स्मार्त ग्रन्थ चित्रित करते हैं
यम के सब सदनों का वर्णन
सात नरक हैं जिनमें पड़कर
पापी भोगें दुखमय जीवन।

3.1.16

यम द्वारा पापी जीवों का
दण्ड विधान किया जाता है
यह अनुचित ना कथन यहाँ पर
यम घर यम शासन चलता है।

3.1.17

शुभ कर्मों औ ज्ञान क्रिया से
चन्द्रलोक में मानव जाता
श्रुतियों में भी कई जगह पर
ऐसा ही वर्णन है आता।

3.1.18

अन्य किसी का चंद्रलोक में
ना सम्भव बनता है जाना
दुष्टों का जग से होता है
बार बार ही जाना आना।

3.1.19

सत्व गुणी उपर जाते हैं
स्मार्त ग्रन्थ यह करते वर्णन

राजस फिर फिर जीते मरते
नरकों में जाते तामस जन।

3.1.20

अधम अवस्था का श्रुतियों ने
कई बार चिन्तन करवाया
असुरों के सारे लोकों में
तिमिर सदा ही रहता छाया।

3.1.21

अंडज[5], जीवज[6] औ उद्भिज्ज[7] ये-
तीन तरह के होते जीवन
स्वेदज सब उदभिज्ज से उपजें
शास्त्रों का ऐसा दिग्दर्शन।

3.1.22

स्वर्ग त्यागकर आत्मा धारे
नभ, आशुग, आदिक[4] क्रमशः गुण
सूक्षम से फिर स्थूल स्थूलतर
औ फिर पावे वह मानव तन।

3.1.23

आत्मा जब ऊपर जाती है
मातृलोक आदिक में रुकती
पर वापिस जब यह आती है
सीधी भू पर इधर उतरती।

ॐ ॐ

3.1.24

व्योम आदि ना आत्मा बनती
केवल उन जैसी हो जाती
वैसे ही यह अन्न बने ना
केवल अन्नों में जा रहती।

3.1.25

अन्न पकाना औ फिर खाना
यह पापों का ना है कारण
इनका भक्षण करने के हित
शास्त्रों में समुचित अवधारण।

3.1.26

अन्न साथ मिलकर जीवात्मा
वीर्य संग काया में आता
अन्न, वीर्य ना बनता आत्मा
केवल साधन इन्हें बनाता।

3.1.27

माता के तन में फिर जाकर
नूतन काया धारे आत्मा
कर्मों के अनुसार इसे जो-
देता है जग में परमात्मा।

॥ इति अध्याय तीन, पाद एक ॥

संदर्भ

1. अग्न = आदि बृहदारण्यक में आया है कि मरने के उपरांत वाणी अग्नि में लीन होती है, प्राण वायु में।

2. श्रद्धा शब्द जल आदि समस्त सूक्ष्म तत्वों के लिए आया है।

3. चरण-आचरण = श्रुति में आचरण शब्द पर जोर दिया जाता है। इसका यह अर्थ नहीं कि शेष भोग्य कर्मों का महत्व नहीं है। न भोगे कर्मों के साथ ही आत्मा फिर प्रकट होती है।

4. कर्माशय = कर्मों को न के बराबर करना

5. अंडज = जो अंडे से पैदा हो।

6. जीवज = जो जेर से पैदा हो।

7. उद्भज = जो ज़मीन फाड़कर निकले।

8. आदिक = आकाश, वायु धूम्र (धुआं) मेघ आदि।

अध्याय - तीन
पाद - दो

विषय सूची

- स्वप्न अवस्था में आत्मा लोक एवं परलोक देखती है। वहां घटित घटनाओं में सुख, दुख का अनुभव करती है। 1
- कुछ लोग आत्मा को ही इच्छित कार्यों का करता मानते हैं, उनके अनुसार आत्मा ही स्वप्नों की सृजना करती है। 2
- स्वप्नों का संसार माया रूप है। 3
- स्वप्न भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं को इंगित करते हैं।
- आत्मा के गुण ईश्वर के समान होते हैं। वे सुप्त रहते हैं पर जब इन गुणों का प्रकटन होता है तो इसे मुक्ति मिलती है। 5
- मैं शरीर हूँ यह भाव ही आत्मा में हीनता लाता है। 6
- सुषुप्त अवस्था में मनुष्य को कोई स्वप्न नहीं आता। उस समय आत्मा सब नस नाड़ियों में आराम करता है। सब नस, नाड़ियां हृदय से जुड़ी हैं जो इसका वास स्थान है। 7-8
- जो सोने जाता है वही जागता है। जागने पर सोने में जाने से पहले के सब कांम याद आते हैं तभी तो वह अपूर्ण कार्य पूरे करता है। 9
- मूर्छा अज्ञान है और सुषुप्ति ज्ञान की अवस्था है। 10
- ईश्वर दोषों में रहते हुए भी उनसे अलिप्त रहता है। 11

- कुछ विद्वान ईश्वर को निर्गुण और सगुण दोनों नहीं मानते उनकी यह मान्यता वेद विरुद्ध है। 13-14
- ज्योति के दो रूप हैं। 15
- शंका - तैत्तिरीयोपनिषद् में ईश्वर को सत्य, ज्ञान, अनन्त स्वरूपी माना है। अतः ईश्वर निगुर्ण नहीं है। 16
- समाधान - यह शंका तैत्तिरीयोपनिषद् के मंत्र ही दूर करते हैं, वहाँ पर ईश्वर को गुणधारी कहा है। 17
- जैसे सूर्य अपने बिम्ब रूप में अनेक जगह दिखाई देता है अर्थात अनेक रूप धारण करता है, वैसे ही ईश्वर अनेक जीवों में रहता है। 18
- जल में दिखने वाला सूर्य ग्रहण नहीं हो सकता, इसका यह अर्थ नहीं कि सूर्य मिथ्या है। 19
- ताल में जल के घटने, बढ़ने से बिम्ब घटता बढ़ता नहीं है। वैसे ही शरीर के घटने बढ़ने से आत्मा घटता बढ़ता नहीं। 20
- इसका यह अर्थ नहीं कि ईश्वर और आत्मा बिम्ब रूप हैं। 21
- ईश्वर नेति नेति से भी परिभाषित होता है। 22
- ईश्वर अव्यक्त है वह इन्द्रियों से ग्रहण नहीं होता। वह तप से भी ग्रहण नहीं होता। 23
- श्रुतियाँ यह भी कहती हैं कि वह तप करने से दर्शन देता है। 24
- जैसे ताप और प्रकाश आदि गुण अग्नि में और तड़िता में सुप्त रहते हैं और समय आने पर प्रकट होते हैं वैसे ही ईश्वर के गुण भी दिखाई नहीं देते। 25
- ईश्वर अनन्त गुणी हैं। 26
- ईश्वर कार्य भाव में हो या कारण भाव में उसमें कोई अंतर नहीं आता। 27
- ईश्वर और उसकी माया दो हैं एक नहीं। 28

- सूरज और उसका ताप दो हैं। दोनों की अलग-अलग सत्ताएँ हैं। इसी प्रकार ईश्वर और जीव भी दो हैं एक नहीं। 29
- सबसे पहले ईश्वर था। माया और पुरुष उसमें लय होकर रहते थे। 30
- परमेश्वर के चार रूपों का वर्णन है। 31
- जीवात्मा ईश्वर से भिन्न भी है और अभिन्न भी। 32
- भेद और अभेद उपासनाओं का फल एक ही है। (भेद उपासना - आत्मा परमात्मा को दो मानना। अभेद उपासना - इन दोनों को एक मान कर पूजन करना।) 33
- जैसे दीपक, चाँद, सूरज सब की देह अलग है पर इनमें प्रकाश एक ही है। वैसे ही सब जीव अलग अलग हैं पर इनमें एक ईश्वर रहता है। 34
- भोग्य और भोक्ता एक हैं और वह ईश्वर है। 35
- अन्य किसी की सत्ता नहीं। 36-37
- आत्मा और प्रकृति किसी को फल नहीं दे सकते, फल तो केवल ईश्वर ही देता है। 38
- आचार्य जैमिनि का मत है कि कर्मों का फल अपने आप मिलता है। 40
- वेद परमेश्वर को फल देने वाला मानते हैं। 41

अध्याय - तीन

पाद - दो

3.2.1

स्वप्न अवस्था में भी आत्मा
लोक एवं परलोक देखता
वे जाग्रत सम हों रचनाएँ
दुख भी, सुख भी, सभी भोगता।

3.2.2

कुछ विद्वत जन कहते आत्मा
इच्छित कार्यों का निर्माता
जो काया के सोने पर भी
इच्छा करके भोग रचाता।

3.2.3

जो स्वप्नों में हो अनुभूति
अस्थायी है उसकी काया
इस कारण शास्त्रों ने माना
स्वप्न सभी हैं छलिया, माया।

3.2.4

सपने संकेतों से कहते
आगे शुभ है या दुखदाई

सपनों के ज्ञाता यह कहते
बात यही श्रुतियों में आई।

3.2.5 (i)

आत्मा में गुण ईश्वर सम हैं
जो सब सोए से रहते हैं
ध्यान सफल जब हो जाता है
तब वे गुण प्रकटा करते हैं।

3.2.5 (ii) दोहा

जिसमें ये[1] प्रकटें नहीं
बादित वह इन्सान
पर जिसमें ये प्रकटते
उसे मिले निर्वाण।

3.2.6 दोहा

मैं तन हूं यह भाव ही
कष्टों का आधार
हीनभाव इस से जगें
करो न तन से प्यार।

3.2.7

श्रेष्ठ सुषुप्ति अवस्था जब हो
स्वप्न नहीं कोई तब सम्भव
तब आत्मा हर नस नाड़ी में
पूरे सुख को करता अनुभव।

3.2.8

सुषुप्ति में जब आत्मा आए
अपने हिय में ही सो जाए
और समय पूरा होने पर
फिर हिय से ही वह जग पाए।

3.2.9 (i)

जो काया में सोने जाता
होता है उसका ही जागरण
अध पूरे कारज भी होते
सोने वाले के ही कारण।

3.2.9 (ii)

सोने से पहले की बातें
याद सभी वह पूरी रखता
वेद कर्म की आज्ञा करते
जो पूरी वह ही कर सकता।

3.2.9 (iii)

कथन यही है शास्त्रों ने जो -
बार बार सबको समझाया
इससे यह निष्कर्ष निकलता
जागे वह ही जो था सोया।

3.2.10 दोहा

मूर्छा का चिन्तन बचा
मूर्छा है अज्ञान

अर्ध सुषुप्ति सा लगे
जो मूर्च्छित इन्सान।

3.2.11 (i) दोहा

दोषी नर में भी रहे
परम ब्रह्म सर्वेश
लिपे न दोषों में कभी
उसकी बात विशेष।

3.2.11 (ii)

निर्विशेष[2] वह ईश है
दिव्य गुणों से युक्त
सभी वेद भी यह कहें
वह दोषों से मुक्त।

3.2.12 दोहा

निर्गुण और सगुण ईश
ना मानें विद्वान
अनुचित श्रुतियाँ बोलतीं
उनका यह संज्ञान।

3.2.13 दोहा

तैत्तिरीयो में ऋषि
देते यह संदेश
द्वै[3] गुणधारी जग रचे
श्रुति वचन सुविशेष।

3.2.14 दोहा

वेद कहें बिन रूप औ
बिन गुण के भगवान
वेदों में ही ईश के
रूप, गुणों का गान।

3.2.15 (i)

ज्योति सदा ही द्वि-रूपी है
शास्त्रों में है ऐसा वर्णन
एक दिखाई देता सबको
दूजे के ना होते दर्शन।

3.2.15 (ii)

इन दोनों रूपों का चिन्तन
व्यर्थ नहीं वेदों में आया
वैसे ही तो परमेश्वर भी
द्वि-रूपों वाला बतलाया।

3.2.16 शंका (तैत्तिरीय से)

सत्य ज्ञान अनन्त स्वरूपी
श्रुति करे ईश्वर सम्बोधन
सगुण ईश का ना वर्णन है
अतः सगुण ना है परमात्मन।

3.2.17 (शंका समाधान)

उसी श्रुति में आगे चलकर
ईश्वर गुणधारी बतलाते

स्मार्त ग्रन्थ भी कितने हैं जो
ऐसे ईश्वर को दर्शाते।

3.2.18

जल में जैसे चंदा, सूरज
बहु रूपों में हों प्रतिबिम्बित
वैसे ही सारे जीवों में
ब्रह्म सहज ही होते दृगगत।

3.2.19

ग्रहण नहीं हो जल में चंदा
केवल छाया वह कहलाता
इस कारण से परमेश्वर को
उस[4] सम ना है जाना जाता।

3.2.20 (i)

तालों में जल घट, बढ़ जाए
बिम्ब कभी ना घटता बढ़ता
तन तो घटता बढ़ता रहता
ईश्वर में ना अन्तर आता।

3.2.20 (ii)

चंद्र बिम्ब औ परमेश्वर में
समता होती इसके कारण
श्रुति वचन में इसीलिए तो
इस उपमा का आया वर्णन।

3.2.21

इसका अर्थ नहीं परमेश्वर
बिम्ब रूप है, यह ना सच्चा
परमेश्वर तो सत्य स्वरूपी
और वास्तविक, यह ना झूठा।

3.2.22

ईश्वर के गुण वर्णित करके
नेति, नेति श्रुतियाँ बतलातीं
नेति, नेति द्वारा ईश्वर की
व्यापकता को ही दर्शातीं।

3.2.23

अव्यक्त सदा रहता ईश्वर
श्रुतियों में यह आता वर्णन
ना इन्द्रियों से, ना तप द्वारा
देखा जा सकता है भगवन।

3.2.24

अव्यक्त कहाता ईश्वर है पर -
श्रुतियाँ करतीं यह भी वर्णन
तप, आराधन द्वारा ईश्वर -
योगी को देते हैं दर्शन।

3.2.25 (i)

आतप जैसे गुण सब छिपकर
वैश्वानर आदिक में रहते

और समय के आने पर वे
कोशिश करके प्रकटा करते।

3.2.25 (ii)

वैसे ही ईश्वर के गुण भी
दिखने में ना होते सम्भव
ध्यान मनन के द्वारा ही वे
साधक जन को होते अनुभव।

3.2.26 दोहा

ऊपर जो वर्णन हुआ
स्पष्ट हुआ यह ज्ञान
शास्त्रों में अनन्त गुणी
वर्णित हैं भगवान।

3.2.27 (i)

सर्प कुंडली धरकर बैठे
या स्वाभाविक रूप सजाए
सर्प सर्प है उसके अंदर
कोई भी ना अंतर आए।

3.2.27 (ii)

इसी तरह से परमेश्वर में
कोई भी ना अंतर आता
कार्य भाव[5] में वह रत हो या-
जब वह कारण[6] भाव सजाता।

3.2.28 (i)

सूरज के आश्रित आतप है
पर ये दो हैं एक नहीं हैं
वैसे ही ईश्वर अरु माया
ये भी दो हैं एक नहीं हैं।

3.2.28 (ii)

तात्विकता में चाहे इनमें-
भेद नहीं कोई भी होता
फिर भी पृथक पृथक चिन्तन है
शास्त्रों में दोनों का मिलता।

3.2.29 (i)

तेज रूप हैं आतप, सूरज
आतप सूरज के आश्रित है
इन दोनों में भेद नहीं पर
सत्ता दोनों की सीमित है।

3.2.29 (ii)

वैसे ही ईश्वर की शक्ति
ईश्वर के होती आधारित
दोनों की सत्ताएँ अपनी
भेद कहीं पर ना है किंचित।

3.2.30

जब जग प्रकटा, तब तो केवल
और नहीं केवल ईश्वर थे

पुरुष तथा माया दोनों ही
उस में रहते लय होकर थे।

3.2.31

सेतु[7] उन्मान[8] सम्बन्ध[9] भेद[10]
चतुर रूप ईश्वर का वर्णन
परमेश्वर सबसे उत्तम है
ऐसा इससे हो दिग्दर्शन।

3.2.32

जीवात्मा से भिन्न ब्रह्म है
और अभिन्न इसे बतलाया
मान्य पक्ष हैं ये दोनों ही
ऐसा श्रुतियों में है आया।

3.2.33 दोहा

चार पाद का ब्रह्म है
समझाते उपवेद
मनन अवर निदिध्यासन
पूजन के उपभेद।

3.2.34 (i) दोहा

दीपक, तारा, सूर में
आतप एक समान
देह, शक्ति, स्थान देख
भिन्न कहें विद्वान।

3.2.34 (ii) दोहा

जीव रहें इस जगत में
'पर'-रूप भगवान
कर्मों के संज्ञान से
इनमें है अधिमान[11]

3.2.35 (i) दोहा

सृष्टि आदि-काल में
केवल था परमेश
उसने जड़, चेतन रचे
कर्म तथा फल-वेष।

3.2.35 (ii) दोहा

यही बात श्रुतियाँ कहें
परम ब्रह्म हैं एक
भोग्य अवर भोक्ता वही
यह है उनकी टेक।

3.2.36 दोहा

और नहीं सत्ता कहीं
श्रुतियों का यह ज्ञान
दोनों अपरा, परा में
उसकी ही पहिचान।

3.2.37

भेद, अभेद विवेचन द्वारा
सर्वगतिक ईश्वर समझाया

इससे भी निष्कर्ष निकलता
पूर्ण जगत में ईश समाया।

3.2.38

कर्मों का फल जड़ माया दे
ऐसा ना हो सकता किन्चन
आत्मा भी ना यह कर सकती
केवल कर सकता यह भगवन।

3.2.39

प्रलय समय भी जाग्रत रहता
शुद्ध तथा अमृत वह भगवन
कर्मों के अनुसार सभी के
फल भोगों का करता नियमन।

3.2.40 दोहा शंका

जैमिनि कहें कर्म ही
करते फल उत्पन्न
जैसे कर्मों बिन कहीं
उपज सके ना अन्न।

3.2.41 दोहा (समाधान)

मानव के हर कर्म का
फल देते जगदीश
श्रुतियों का भी मत यही
फल देते हैं ईश।

संदर्भ :

1. ये = ईश्वर के समान गुण
2. निर्विशेष = सब प्रकार के दोषों से रहित।
3. द्वैगुण = निर्गुण और सगुण
4. उस सम = बिम्ब
5. कार्य भाव = परमेश्वर जब सृष्टि रचना में लग जाता है।
6. कारण भाव = ईश्वर की वह अवस्था जब ईश्वर के गुण अप्रक्ट रहते हैं। (सृष्टि रचना से पूर्व)
7. सेतु = जो सबको धारण करता है।
8. उन्मान = सबसे बड़ा।
9. सम्बन्ध = परमेश्वर को प्रकृति का स्वामी कहा है। ईश्वर का प्रकृति से सम्बन्ध।
10. भेद = परमेश्वर और पुरुष, प्रकृति का भेद अर्थात ईश्वर सबसे विलक्षण है।
11. अधिमान = एक को दूसरे से बड़ा या श्रेष्ठ समझना।

अध्याय - तीन
पाद - तीन

विषय सूची

- ब्रह्म प्राप्ति के लिए अलग अलग श्रुतियों में अलग अलग मार्ग सुझाए हैं। 1
- अलग अलग श्रुतियों में जगत की रचना के लिए अलग अलग रूपकों का वर्णन किया गया हैं पर सबका निष्कर्ष यही है कि जगत की रचना स्वयं ईश्वर ने की है। सारे शास्त्र केवल एक ब्रह्म का ही चिन्तन करने को सुझाते हैं। 2
- माण्डूक्य उपनिषद् में ब्रह्मज्ञान के लिए शिरोव्रत (ब्रह्मचर्य) का पालन करने के लिए कहा गया है। अन्य शाखा वाले ऐसा नहीं कहते। 3
- सबको एक ब्रह्म को प्राप्त करना है। 4
- श्रुतियों में ज्ञान के अर्थ भेद नहीं हैं। एक श्रुति में जो वर्णन है दूसरी श्रुति में उपसंहार के समान है। 5
- श्रुतियों में शब्द भेद से अर्थ भेद नहीं होता। 6
- किसी भी श्रुति वचन का केवल प्रकरण भेद होने से अर्थ भेद नहीं हो जाता। 7
- अगर संज्ञा का अर्थात नाम का ही भेद हो तो दोनों विद्याएं एक ही होंगी। 8

- ब्रह्म सर्वव्यापक है, अलग अलग श्रुतियों में केवल वर्णन की भिन्नता है। 9
- ईश्वर ही परमानन्द है वह सर्व-स्वरूपी है। 10-11
- तैतिरीयोपनिषद् में ईश्वर को पक्षी रूप में बताया है। वह रूपक है। ब्रह्म घटता बढ़ता नहीं। 12
- आनंद आदि गुण, ईश्वर के स्वाभाविक गुण हैं। अव्यय आदि गुण उसके स्वाभिवक नहीं, वे रूपक मात्र हैं। 13
- इसी प्रकार ईश्वर को देहधारी कहना समझाने के लिए है। 14
- ईश्वर आनन्द है। 15
- आत्मा ही ईश्वर है। यहां आत्मा परमात्मा के लिए आया हैं। वही बहुरूपी बनता है। 16
- आत्मा शब्द दो प्रकार से उपयोग हुआ है जब हम अन्वय कह इसे अन्न प्राण मनोमय कहते हें, तब यह जीवात्मा हित होता है। पर जब आत्मा सर्वव्यापक, सकल नियन्ता आदिक बोला जाता है, तब वह परमात्मा हित बोला हुआ मानना चाहिए। 17
- अन्न रस आदि ईश्वर की रचना नहीं करते। ये भौतिक पुरूष की रचना करते हैं, जिसमें आत्मा आकर निवास करती है। 18
- वृहदारण्यक और शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थों के ज्ञान में वास्तव में कोई भेद नहीं। दोनों में उपास्य भेद नहीं है। 19-22
- सर्वव्यापक ईश्वर सब कुछ धारण करता है। सर्वव्यापकता आदि गुण नेत्र स्थापित पुरुष में नहीं पाए जाते। पर वे इन तक सीमित नहीं। ना ही अन्य कोई उत्पादन, संहारण कर सकता है। 23-24
- ईश्वर पूजन हित आत्मा को शर बनाकर श्रद्धापूर्वक परमेश्वर को बींधने के लिए मुण्डक श्रुति कहती है, पर यह शर भेदन अन्य किसी विधा के लिए वहां वर्णित नहीं है। 25
- सुख, दुख वर्णन का परम प्राप्ति से सम्बन्ध है, ये वर्णन

इसीलिए किए जाते हैं। परम प्राप्ति सुख, दुख वर्णन का उपसंहार है। यह वैसे ही है जैसे कुशा, छंद, स्तुति, उपगान आदि के वर्णन में एक शाखा वाले दूसरे से अधिक स्पष्ट बात कहते हैं। दूसरे का वर्णन पहले का अध्याहार है। 26

- लय अवस्था पाकर कोई पाप, पुण्य से नहीं बचता। 27
- मरने पर साधक अपने संकल्प के अनुसार फल प्राप्त करता है। 28
- कुछ श्रुतियों में वर्णन है कि साधक सीधा ईश्वर में लय हो जाता है पर कुछ श्रुतियाँ कहती है कि साधक को पहले ब्रह्म लोक से होकर जाना पड़ता है। ये दोनों ही ठीक हैं। नहीं तो श्रुति वचनों में विरोधाभास है, मानना पड़ेगा। 29
- दिव्य लोक की यात्रा सूक्ष्म काया द्वारा सम्भव है। वहाँ पहुँचकर साधक की कोई इच्छा नहीं रहती। लय अवस्था के लिए साधक को देवयान मग अपनाना पड़ता है। 30
- लय अवस्था प्राप्ति के लिए भिन्न भिन्न पूजा विधियाँ हैं। पर सबको देवयान का मार्ग अपनाना ही होगा। 31
- अधिकारित आत्माएँ विशेष काम के लिए अवतरण करती हैं और अपना काम पूरा करके ईश्वर में लय हो जाती हैं। 32
- भिन्न भिन्न श्रुतियों में ईश्वर के भिन्न भिन्न गुण कहे हैं। 33
- कठ, मुण्डक ईश्वर और आत्मा दोनों को हिय कन्दरा में रहने वाला बतलाते हैं और दोनों की सीमा भी एक है। 34
- ईश्वर में सब कुछ व्याप्त है जैसे आकाश सब भूतों में। 35
- ईश्वर जड़ चेतन से अभेदक है जैसे सोना और आभूषण। 36
- ईश्वर और मैं एक हैं। 37
- सत्य संकल्प करने के गुण ईश्वर में हैं, आत्मा में नहीं। 38
- निर्विशेष (विशेषण रहित) और जगत को धारण करने का गुण भी केवल ईश्वर में है, आत्मा में नहीं। 39

- ईश्वर द्रष्टा है यह आदर सूचक वर्णन नहीं, यह उसका गुण है। आत्मा का द्रष्टापन ईश्वर के द्रष्टापन से बहुत थोड़ा है वह सीमित है। 40-41
- ब्रह्मलोक के अधिकारी का ब्रह्मलोक में जाकर ईश्वर में लय होने का ध्येय होता है। उसे अनुषांगिक रूप में ब्रह्म भोग भी मिलते हैं, पर ब्रह्मभोग की कामना लय में बाधक है। 42
- जीवन का ध्येय ब्रह्म में लय होना है और ब्रह्मभोग इसमें बाधक का काम करते हैं। 43-44
- मोक्ष प्राप्ति के तीन मार्ग हैं, शारीरिक परिश्रम, मानसिक प्रयत्न और अग्निहोत्र आदि यज्ञ। 45
- श्रुति वचनों को सत्य मानो। यज्ञ, ज्ञान, तप करने वाले मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। 46
- लय होने के लिए ब्रह्मज्ञान ही साधन है, कर्म नहीं। 47
- ब्रह्मलोक से, अच्छे कर्मों के फल भोगने के बाद साधक वापिस आते हैं पर जो ईश्वर में लय हो जाते हैं वे नहीं आते। 48
- श्रुति वचन को प्रमाण मानो। अगर प्रकरण कोई अन्य अर्थ इंगित करे तो उसे त्यागना ही उचित है। 49
- इच्छा हित पूजन करने वाले साधकों को एकसमान फल नहीं मिलते। 50
- ब्रह्मज्ञान से मोक्ष मिलता है और कारण तन से सम्बन्ध टूट जाता है। 51
- जो ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर भी भोगों की इच्छा रखते हैं, उनका कारण शरीर से सम्बन्ध नहीं छूटता। 52
- कुछ ज्ञानी आत्मा की सत्ता तब तक मानते हैं जब तक शरीर की सत्ता है। 53
- आत्मा और शरीर भिन्न हैं क्योंकि जब शरीर से आत्मा

निकलता है तब भी शरीर की सत्ता होती है। 54

- उद्गीथ आदि सब अंगों की पूजा सब कर सकते हैं। 55
- मानवता की धरोहर सबके लिए होती है। जिस शाखा में जो ज्ञान बताया है, वह सबके लिए है। 56
- यज्ञकार्य विधिपूर्वक करना चाहिए। 57
- ब्रह्म प्राप्ति के लिए बहुत सी विधाएं हैं, जो अलग अलग जानी जाती हैं। चाहे सबका ध्येय एक हो। 58
- हर शाखा का साधक अपनी शाखा से ध्येय तक जाता है। 59
- हर सकाम उपासना के लिए अलग अलग उपासना बताई है। अगर बहुत कामनाएँ हों तो सबका समुच्चय करो और अगर समुच्चय सम्भव न हो तो अलग अलग उपासनाएँ करो पर करो विधि से। 60
- उद्गीथ आदि की अपनी ही पूजा विधि है। शास्त्र जिसकी जैसी आज्ञा देता है, उसकी वैसे पूजा करो। 61
- उद्गीध आदि स्तोत्रों के समुच्चय का शास्त्रों में विधान है। यही इसकी आश्रित उपासनाओं पर लागू होता है। 62
- कर्मों का संग्रह (समाहार) भी करना चाहिए। एक कर्म दूसरे की कमी पूरी कर देता है। 63
- ओंकार ही उद्गीथ है। 64
- उपासनाएँ कर्म के अधीन नहीं। कर्म के साथ उनका समुच्चय सम्भव नहीं। दोनों स्वतंत्र हैं। एक पूजा विधि का दूसरी पूजा विधि से संयोजन सम्भव नहीं। 65

अध्याय - तीन

पाद तीन

3.3.1

सारे वैदिक ग्रन्थों में ही
ब्रह्म प्राप्ति है ध्येय बताया
भिन्न भिन्न विधियों के द्वारा
ज्ञान यही हम तक है आया।

3.3.2 (i)

सब श्रुतियों में जग रचना हित
जितने भी हैं रूपक आए
साम्य नहीं है उनमें कोई
भिन्न भिन्न सब ने बतलाए।

3.3.2 (ii)

पर सब कहतीं जग से पहले
चारों दिक् में तब थे भगवन
अन्य किसी की सत्ता ना थी
जो हो सकती जग का कारण।

3.3.2 (iii)

सभी वेद, ग्रन्थों के अंदर
एक समान नहीं वर्णन है
तत्व रूप में जो सोचें तो
एक ब्रह्म का ही चिन्तन है।

3.3.3

ब्रह्म ज्ञान हित मुंडक कहता
ब्रह्मचर्य व्रत करना पालन
अन्य किसी शाखा अन्तर्गत
ऐसा कठिन नहीं अनुशासन।

3.3.4

जितनी भी श्रुतियाँ हैं वे सब
एक ब्रह्म का करतीं वर्णन
प्राप्त वही सबको करना है
सबको हो उसका दिग्दर्शन।

3.3.5 दोहा

अर्थ भेद कोई नहीं
श्रुतियों में जो ज्ञान
एक वर्ग गुण, अन्य में
उपसंहार समान।

3.3.6 दोहा

पृथक पृथक प्रयोग से
अन्य लगेगा ज्ञान

अनुचित है यह सोच सब
आशय एक समान।

3.3.7

श्रेष्ठ अवर अश्रेष्ठ गुणों युत
विद्याएं शास्त्रों में वर्णित
प्रकरण भेद के कारण उनके
भिन्न नहीं हो जाते हैं मत।

3.3.8 दोहा

नामभेद होने के कारण
पृथक नहीं हो ज्ञान
ऐसे ही तो पूर्व में
शंका करी निधान।

3.3.9 दोहा

सर्वव्यापक ब्रह्म है
श्रुतियों का संज्ञान
वर्णन में ही भिन्नता
ध्येय एक समान।

3.3.10

सब शास्त्रों में ईश्वर वर्णन
भिन्न विधाओं द्वारा होता
सर्वस्वरूपी दर्शाने में
सबमें मिलती एकरूपता।

3.3.11

जिसको हम सब ईश्वर कहते
परमानंद वही कहलाता
और बहुत सारे गुण उसमें-
जिन सबसे वह जाना जाता।

3.3.12 शंका

शिर, पंखों सम ईश्वर लक्षण
(तैत्तिरीयोपनिषद् में परिलक्षित)
ब्रह्म घटेगा और बढ़ेगा
उनसे यह होगा आपेक्षित।

3.3.13 समाधान

अव्यव आदिक गुण ईश्वर में
ये रूपक हैं ना स्वाभाविक
पर आनंद आदि गुण उसके
स्वाभाविक हैं और वास्तविक।

3.3.14

ईश्वर कायाधारी भी है
समझाने हित ही है चिन्तन
वास्तव में काया ना उसकी
समझ सकें 'रूपक' इस कारण।

3.3.15

विज्ञानमयी - उस की आत्मा
श्रुतियों में आनन्द कहाती

इसकी कोई ना आत्मा है
यह ही, 'ईश्वर' जानी जाती।

3.3.16

आत्मा ने बहु बनना सोचा
बहु श्रुतियों में वर्णन आया
इस रूपक से समझ बने यह
आत्मा ही ईश्वर कहलाया।

3.3.17 (i)

जब अन्वयं कर अन्न, प्राणमय
और मनोमय बोलें आत्मा
तब आत्मा परमात्मा ना है
वह होती केवल जीवात्मा।

3.3.17 (ii)

सर्व व्यापक सकल नियंता
या जब हम आनन्द बुलाते
तब आत्मा ही परमात्मा है
श्रुति वचन ऐसा समझाते।

3.3.17 (iii)

आत्मा जीवात्मा हित आयी
या आयी परमेश्वर के हित
पूर्व कहे वर्णन पर निर्भर
शास्त्र सभी करते यूँ निश्चित।

3.3.18

पुरुष अन्न औ रसमय होता
ब्रह्म नमित अनुचित वर्णन है
ईश्वर सत्य ज्ञान अविनाशी
यह उसका समुचित चिंतन है।

3.3.19 (i)

वाजस्नेयी ग्रन्थों में है
दिखती जो भी ज्ञान भिन्नता
उनमें परमेश्वर के गुण हित
भावरूप में पूर्ण एकता।

3.3.19 (ii)

वृहदारण्यक औ शतपथ में
भिन्न रूप में दिखता पूजन
उपास्य भेद ना इनमें कोई
फिर भेदों का कैसा कारण?

3.3.20 शंका

अन्य स्थांनों पर भी आया
पूजक, पूजित सम्बन्धों हित
उन स्थानों पर भी दिखती है
पृथक पृथक क्यों विधियाँ वर्णित।

3.3.21 (i) समाधान

जो सूरज में देव उपस्थित
नेत्रों में भी वह ही रहता

वृहदारण्यक में उसको ही
भिन्न रूप में पूजा जाता।

3.3.21 (ii)

,भिन्न विधाएँ चाहे दोनों
स्थान नाम का चाहे अंतर
एक उपास्य है इन दोनों में
जिस को ज्ञानी माने ईश्वर।

3.3.22

एक जगह पर वर्णित जो गुण
सहज मिलें ना अन्य जगह पर
जहाँ कहीं ये प्रासंगिक हैं
स्वयं श्रुति कहती व्याख्या कर।

3.3.23

ईश्वर अक्षर, सर्वव्यापक
वह ही सब कुछ करता धारण
नेत्र, सूर मंडल आदिक में
इसकी सीमित ना अवधारण।

3.3.24

पुरुष-ब्रह्म का वर्णन करते
जो बतलाता मुंडक लक्षण
उत्पादन संहारण सम वे
अन्य नहीं कर सकते धारण।

3.3.25 (i)

नित पूजा के द्वारा तीखे -
शर सी जब बनती है आत्मा
प्रणव नाम का धनुष बनाकर
श्रद्धा से बींधे परमात्मा।

3.3.25 (ii)

मुंडक का यह सुंदर रूपक
केवल ईश्वर पूजन हित है
अन्य विधाओं हित यह रूपक
श्रुति वचन में ना वर्णित है।

3.3.26 (i) दोहा

सुख, दुख, पुण्य, पापादि
जहाँ श्रुति दे ज्ञान
परम प्राप्ति उस ज्ञान में
अध्याहार समान।

3.3.26 (ii) दोहा

कुशा, छंद, स्तुति गान का
अधिक जहाँ संज्ञान
अधिक वहाँ जो भी कहा
पूरा करता ज्ञान।

3.3.27

मुंडक कहता लय होने पर
पाप, पुण्य ना कोई बचते

वृहदारण्यक में भी ऋषि वर
ऐसा सच्चा चिन्तन करते।

3.3.28

संकल्पों के ही अनुरूपी
साधक मर करके कुछ पाए
वह लय हो या देवयान से –
ब्रह्मलोक में उड़कर जाए।

3.3.29 (i)

कुछ श्रुतियों अनुसार मुमुक्षी
तत्क्षण ईश्वर में मिल जाते
कुछ में वर्णित सारे साधक
ब्रह्मलोक में पहले आते।

3.3.29 (ii)

दोनों की ही सार्थकता है
दोनों द्वारा सम्भव हो लय
अन्य सोच से अनुभव होगा।
केवल संशय या हो फिर भय।

3.3.30 (i)

देवयान मग पर चल साधक
ब्रह्मलोक में जब है आता
वहाँ पहुँचने के हित में वह
सूक्ष्म काया को अपनाता।

3.3.30 (ii)

काम रहित होकर वह साधक
कोई फिर ना इच्छा रखता
पूर्णब्रह्म बन करके वह फिर
पूर्णब्रह्म में जाकर मिलता।

3.3.31 (i)

भिन्न-भिन्न पूजा विधियों से
ईश्वर में लय का वर्णन है
देवयान मग का पर सब में
ना मिलता चिन्तन दर्शन है।

3.3.31 (ii)

अर्थ नहीं है इसका यह कि -
सीधे ही लय होता साधक
देवयान मग द्वारा सब को
जाना होगा परमेश्वर तक।

3.3.31 (iii)

श्रोत्र, स्मार्त ग्रन्थों में इससे
उल्टा कहीं नहीं कुछ चिन्हित
इस कारण यह मान्य व्यवस्था
उचित तथा है यह शास्त्रोचित।

3.3.32 (i)

अधिकारित आत्माएँ जग में
निश्चित कारज करने आतीं

अपने कारज पूरे करके
स्वयं ईश में लय हो जातीं।

3.3.32 (ii)

मोक्ष प्राप्त शुभकर्मी आत्मा
ब्रह्मपुरे में रहती तब तक
शुभकर्मों का कोई भी फल
शेष नहीं रहता है जब तक।

3.3.33

बहु श्रुतियों में परमेश्वर के
भिन्न भिन्न लक्षण बतलाए
एक जगह पर जो गुण वर्णित
दूजे में उपसत् कहलाए।

3.3.34

कठ, मुंडक आदिक श्रुतियाँ यह
कहती हैं, परमात्मा, आत्मा –
हिय कुंदरा में मिलकर रहते
औ दोनों की सम है सीमा।

3.3.35

सब भूतों के अन्दर नभ है
पूरा फैला रहता जैसे
परमात्मा भी आत्मा अंदर
व्याप्त सदा ही रहता वैसे।

3.3.36 (i)

इन दोनों को यूँ कहने से
भेद रूप में दोनों दिखते
पर यह चिन्तन उचित नहीं है
शास्त्र अभेदक इनको कहते।

3.3.36 (ii)

कर्म अवर आत्मा की भान्ति
भेद रहित इनको बतलाया
जड़ औ चेतन दोनों में ही
ईश अभेदक है समझाया।

3.3.37 (i) दोहा

एक्य[2] भावना से श्रुति
देती यह उपदेश
साधक भी ईश्वर बने
कहती तत्व विशेष।

3.3.37 (ii) दोहा

मेरे औ ईश्वर प्रति
श्रुति करे यूँ व्यक्त
जो मैं हूँ वह ईश है
मैं ही हूँ अव्यक्त।

3.3.38

सत्य, संकल्प आदिक गुण सब
परमेश्वर में ही केवल हैं

आत्मा के ये सब गुण ना हैं
ये दोनों में भेद प्रबल है।

3.3.39

निर्विशेष परमेश्वर होता
श्रुति वचन यह करते वर्णन
और वहाँ प्रतिपादित होता
ईश्वर ही जग करता धारण।

3.3.40

अन्य नहीं कोई भी द्रष्टा
यह आदर हित ना सम्बोधन
अन्य सभी में सीमित सा है
जो भी है उनमें द्रष्टापन।

3.3.41 (i)

द्रष्टा, श्रोता केवल ईश्वर
श्रुतियों में यह कहा गया है
जहाँ जहाँ यह वर्णन मिलता
'अतः' शब्द उपयोग हुआ है।

3.3.41 (ii)

अर्थ हुआ इसका उससे बड़
और किसी में ना द्रष्टापन
पर यह अर्थ नहीं है किंचित
अन्य सभी हैं द्रष्टापन बिन।

3.3.42 (i)

ब्रह्म लोक का अधिकारी ही
ब्रह्म लोक अंदर आएगा
इससे यह ना निश्चित है कि -
दिव्य भोग भी वह पाएगा।

3.3.42 (ii)

ब्रह्मज्ञान के फल अंउर सब
दिव्य भोग अनुषाङ्गिक हैं
पुरुष ध्येय तो लय होना है
दिव्य भोग जिसमें बाधक है।

3.3.42 (iii)

पर जो ब्रह्मलोक के इच्छुक
उनको ब्रह्मभोग भी मिलते
जैसे ऊपर बतलाया है
पर ये अनुषाङ्गिक ही रहते।

3.3.43

ईश्वर में लय होने के हित
ब्रह्म भोग सारे ही बाधक
जो समझाए उन सबको यह
उपकारी समझें सब साधक।

3.3.44 (i)

मोक्ष प्राप्ति हित सब शास्त्रों में
बहुत जगह पर है विश्लेषण

ईश्वर में लय हो जाने का
केवल दिखता है प्रतिवेदन[3]।

3.3.44 (ii)

दिव्य भोग भी मिलते, इसका
जहाँ जहाँ पर मिलता चिन्तन
गुरुतम फल है ईश्वर पाना
दर्शाता यह ही वह दर्शन।

3.3.45 (i)

पूर्व कहे इन सूत्रों में है
तीन तरह के काज सुझाए
इन तीनों के द्वारा साधक
मोक्ष प्राप्तकर लय हो जाए।

3.3.45 (ii)

कर्मों से या ध्यान क्रिया से
मुक्त जगत से हो जाएँ नर
अग्न मार्ग से भी सम्भव है
पहुँचे जाकर नर उस दर पर।

3.3.46 (i)

मोक्ष प्राप्ति हित वेदों ने है
ब्रह्म ज्ञान साधन बतलाया
यज्ञ, ज्ञान, तप द्वारा भी यह
सम्भव है, ऐसा समझाया।

3.3.46 (ii)

प्रकरण अन्य करें जब इंगित
तब भी सत्य श्रुति को मानो
ज्ञान, यजन, तप करने वाले
मुक्त सभी हो सकते जानो।

3.3.47

श्रुतियाँ कहतीं ब्रह्म ज्ञान ही
ब्रह्मधाम में लय करवाता
अन्य किसी मग हित ना निश्चित
ध्येय तलक जो लेकर जाता।

3.3.48

श्रुतियाँ कहतीं ब्रह्मलोक से
भोग भोग नर वापिस आता
पर ज्ञानी नर देह त्याग कर
परमेश्वर में लय हो जाता।

3.3.49

श्रुतियों में वर्णित बातें ही –
केवल, सारे उत्तम जानो
प्रकरण अन्य करें भी इंगित
तो भी सत्य श्रुति को मानो।

3.3.50 (i)

पहले भी आया, इच्छा हित –
जो साधक पूजाएँ करते

एक समान नहीं फल सबका
जो इन पूजाओं से मिलते।

3.3.50 (ii)

ब्रह्म साधना के कुछ साधक
भोगों की इच्छाएँ रखते
कुछ कहते लय हों ईश्वर में
उन को भोग तुच्छ सब लगते।

3.3.50 (iii)

भोगों के इच्छुक साधक को
देव लोक में भोग मिलेंगे
ध्येय बनाया जिसने लय को
वे ईश्वर में लय होवेंगे।

3.3.51 (i) दोहा

ज्ञान दिलाता मोक्ष है
श्रुतियाँ दें यह ज्ञान
कुछ[4] फल-भेद विधान का
करतीं सब सम्मान।

3.3.51 (ii)

लय होने पर देह से
रहता ना अनुबन्ध
कारण-तन, हर लोक से
छुटते सब सम्बन्ध।

3.3.52 (i) दोहा

आगे जो बर्णन किया
सिद्ध करे विश्वास
ज्ञानी लय हों ईश में
बात बहुत है खास।

3.3.52 (ii)

ब्रह्म ज्ञान को पा करके भी
जो भोगों की इच्छा रखता
ब्रह्म लोक में भी काया से
बन्धन उसका ना है छुटता।

3.3.53

कुछ ऐसे भी ज्ञानी हैं जो
प्रस्तुत करते ऐसा दर्शन
आत्मा की सत्ता है तब तक
जीवित जब तक है भौतिक तन।

3.3.54 समाधान

आत्मा तन से तब ना निकले -
जग में भौतिक तन जब रहता
अर्थ हुआ इसका दोनों की
अलग अलग होती है सत्ता।

3.3.55

उद्गीथ आदि अंगों सम्बन्धी
जो पूजा विधियाँ पहचानी

अनुष्ठान कर सकते उनका
सब शाखाओं के सब ज्ञानी।

3.3.56 (i)

उपशाखाओं में कितनी ही
पूजा की विधियाँ बतलाईं
यह विध केवल इस विध हित है
ऐसी बातें ना समझाई।

3.3.56 (ii)

एक विधा जो मंत्र बताए
अन्य मगों में भी उपयोगी
श्रेष्ठ धरोहर वह मानव की
सब ज्ञानी पुरुषों हित होगी।

3.3.57 दोहा

कोई भी पूजा करें
होवे पूर्ण विधान
यही बात श्रुतियाँ कहें
और कहें विद्वान।

3.3.58

ब्रह्मप्राप्ति हित ज्ञानी-जन को
भिन्न भिन्न उपलब्ध विधाएँ
शब्द विधान अलग हों सबमें
अतः अलग ये जानी जाएँ।

3.3.59

ब्रह्म प्राप्ति का फल पाने को
उपलब्ध रहें जो जो विधियाँ
अपनी अपनी विधि द्वारा सब
एक ध्येय तक बढ़ते जाएँ।

3.3.60 (i)

काम्य उपासन में हर फल हित
अलग अलग होती पूजाएँ
जिस फल की हो इच्छा जिनकी
विधा वही फल हित अपनाएँ।

3.3.60 (ii)

बहुत कामनाएँ होवें तो
करना होगा बहु विध साधन
अगर समुच्चय नहीं सम्भव तो
अलग अलग हो पूजा नियमन।

3.3.61 (i)

उद्गीथ आदि की पूजा विधियाँ
यज्ञों द्वारा की निर्धारित
जिसके हित जैसे समझाया
करनी होगी वैसे पूरित।

3.3.61 (ii)

जिन जिन पूजा विधियों का है
सम्भव हो सकता संयोजन

उन सबका संयोजन करके
पूजा क़रते हैं विद्वतजन।

3.3.62 दोहा

उद्‌गीथ आदि स्त्रोतों के
समुच्चय क़ा निर्देश
आश्रित पूजाएँ स्वयं
करें समुच्य विशेष।

3.3.63 दोहा

समाहार हों कर्म सब
श्रुति करे उपदेश
पूजा विधियों के नमित
देतीं यह संदेश।

3.3.64

ओंकार कहें, उद्‌गीथ कहें
एक प्रणव होता निर्देशित
सब कर्मों में इसकी सत्ता
इस कारण हो समाहरण।

3.3.65

उद्‌गीथ आदि पूजा विधियों का
समाहार हो, वर्णन आया
पर उद्देश्य भिन्नता सबमें
अतः श्रुति ना यह बतलाया।

3.3.66

पूजाओं का आपस में औ -
कर्मों द्वारा हो संयोजन
इस कारण से भी तो ऐसा
ना बनता, है कोई कारण।

॥ इति अध्याय तीन, पाद तीन ॥

संदर्भ

1. ईश्वर को प्रकाश रूप मानकर पूजना या ईश्वर को प्राण रूप मानकर पूजन करना।

2. एक्य भाव = जो मैं हूँ वह ईश्वर है और जो ईश्वर है वह मैं हूँ।

3. प्रतिवेदन = निवेदन

4. कुछ फल भेद जैसे कुछ साधक करने पर ब्रह्मलोक में जाते हैं पर कुछ जीवन में ही ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेते हैं।

अध्याय - तीन

पाद - चार

विषय-सूची

- ब्रह्मज्ञान मोक्ष का कारक है। यह बादरायण का कथन है। 1
- जैमिनी का मत है ज्ञान कर्म का अंश है। कर्म ही मोक्ष दिलाता है, तब जब कर्म ज्ञानपूर्वक किया जाता है। 2
- श्रेष्ठ पुरुषों का आचरण देखकर भी यही अनुभव होता है कि ज्ञान कर्मों का अंश है। 3
- यही बात श्रुति से भी सिद्ध होती है। 4
- मरने पर कर्म और ज्ञान आत्मा के साथ जाते हैं। इसीलिए वृहदारण्यकोपनिषद् विद्या को करण का अंश कहता है। 5
- शुभ कर्मों से ही ईश्वर की प्राप्ति होती है। 6
- ज्ञानपूर्वक सारी आयु शुभ कार्यों में लगे रहो। 7
- व्यास ऋषि ज्ञान को कर्मों से अधिक महत्व देते हैं। अतः ज्ञान कर्मों का अंश बतलाना गलत है। 8-9
- छांदोग्योपनिषद् तो केवल उद्गीथ ज्ञान को ही कर्मों का अंश कहता है, सब प्रकार की विद्याओं के सम्बन्ध में नहीं कहता। 10
- यदि 100 मुद्राएँ बाँटने के लिए हों तो उनको विभागशः खर्च करना होगा। इसी प्रकार आदमी जितने संस्कार अर्जित करता

है उसे उनके अनुरूप नया जन्म मिलता है पर ज्ञानी कोई संस्कार नहीं बनाता वह सीधा ईश्वर में लय हो जाता है। 11

- विद्या प्राप्त मनुष्य के लिए कर्मों का विधान है। इसका अर्थ यह नहीं कि ज्ञान कर्म का अंग है। मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान जरूरी है। 12
- कर्म तो सबको करने ही हैं। 13
- ब्रह्म लीन ज्ञानी कर्मों से अलिप्त रहता है। 14
- कुछ ज्ञानी अपने कर्मों को त्याग देते हैं इससे भी सिद्ध होता है कि ज्ञान कर्म अंशी नहीं है। 15
- ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके सब संस्कार मिट जाते हैं। 16
- ब्रह्मचारी ज्ञानी ईश्वर में लय हो जाते हैं। 17
- ईश्वर में लय होने के लिए सन्यास आवश्यक नहीं, ऐसा जैमिनी ऋषि कहते हैं। 18
- व्यास ऋषि पूरी आश्रम व्यवस्था को जरूरी मानते हैं। 19
- सभी आश्रमों का पालन करना चाहिए पर यदि किसी भी अवस्था में वैराग्य हो जाए तो सन्यास लिया जा सकता है। 20
- उद्गीथ आदि उपासनाओं में उसकी महिमा के जो वचन हैं ये केवल उद्गीध की स्तुति मात्र नहीं। उद्गीथ आदि की उपासनाएँ अपूर्व हैं ईश्वर में लयकारक हैं। 21
- ज्ञान कर्म का अंशी नहीं और ईश्वर प्राप्ति के लिए कर्म जरूरी नहीं। (छांदोग्योपनिषद) 22
- उपनिषदों में आसन दिए हैं, वे ध्येय तक जाने के लिए नौका का काम करते हैं, पर सारे नहीं। 23-24
- ब्रह्मज्ञान ही लयकारक है, हवन, यज्ञ आदि गौणी क्रियाएँ हैं। 25
- यज्ञ कर्म आदि केवल ध्येय पथ पर ले जाते हैं। ध्येय तक तो ब्रह्मज्ञान ही पहुँचाता है। 26

- चाहे सिद्धि के लिए कोई कर्म आवश्यक न भी हो, तो भी शम, दम आदि तो करने ही है। 27
- साधारणतः दूषित खाना नहीं खाना चाहिए पर आपत्काल में कुछ भी खाया जा सकता है। 28-31
- आश्रम अनुरूपी और शम, दम कर्म सबको करने ही हैं। 32
- अपने निर्धारित कर्म तो सबको करने ही हैं। कर्म, आसक्ति के बिना हों, ऐसे जैसे आसक्त पुरुष आसक्ति से कर्म करता है। 33-34
- ज्ञानी बनने के उपरांत सब संस्कार मिट जाते हैं। 35
- वर्ण व्यवस्था के पालन के बिना भी परम धाम मिल सकता है। 36-37
- भक्ति सबसे उत्तम मग है। 38-39
- जैमिनी ऋषि कहते हैं कि उच्चतर आश्रम व्यवस्था से साधक नीचे की आश्रम व्यवस्था में नहीं आएँ। 40
- इसका प्रायश्चित नहीं है। 41
- शंका- जब अभक्ष्य भोजन आपातस्थिति में कर सकता है तो गलती करके फिर उठना उचित है।

  समाधान - कई आचार्य इसे उपपातक मानते हैं। जैसे ब्रह्मचारी अगर अपने व्रत से भ्रष्ट हो तो उसे प्रायश्चित का अधिकार दिया है। वैसा ही अधिकार गृहस्थी को, वानप्रस्थी को और सन्यासी को भी देना चाहिए। 42
- ऐसे लोगों को त्याज्य समझना चाहिए, नहीं तो समाज भ्रष्ट हो जाएगा। 43
- यज्ञ का फल ऋत्विक को नहीं मिलता, यजमान को ही मिलता है। 44
- ऋत्विक दक्षिणा लेते हैं, कारज तो यजमान का है। 45-46
- साधक का जीवन बाल सुलभ हो। मौन साधना करे और ज्ञानी

हो। 47

- गृहस्थ में सारे आश्रमों का भाव रहता है। 48
- ब्रह्म प्राप्ति के लिए सब लोग अधिकारी हैं सबको मननशील बनना चाहिए। 49
- सबमें बालक सी सरलता, सहजता हो फिर निर-अभिमानी होकर सब राग, द्वेष छोड़ दें। 50
- सबको कर्मों का फल मिलता है। यदि कर्मफल इस जन्म में नहीं मिले तो आगे किसी जन्म में मिल जाएगा। 51-52

अध्याय - तीन

पाद - चार

3.4.1 दोहा

ब्रह्मविद्या मोक्षकारक
बादरायण उपदेश
अन्य श्रुतियाँ भी यही
देतीं हैं संदेश।

3.4.2 (i)

ईश प्राप्ति हित पुरुषार्थ को
जैमिनी साधन हैं बतलाते
पुरुषार्थ ही कर्म कहाता
ज्ञान कर्म का अंश सुझाते।

3.4.2 (ii)

ज्ञान कर्म अंशी बतलाकर
जैमिनी ज्ञान करें सम्मानित
ईश्वर में जो लय होना हो
वह कर्मों पर है आधारित।

3.4.3 दोहा

श्रेष्ठ जनों के कार्य से
समझें यह विद्वान

कर्मों का ही अंश है
ब्रह्म प्राप्ति का ज्ञान।

3.4.4

श्रुति कहे ज्ञानी, अज्ञानी
सबको कर्मों का फल मिलता
पर श्रद्धा युत योग युक्त ही-
केवल श्रेष्ठ फली हो सकता।

3.4.5

विद्या और कर्म, सारे ही
संग पुरुष के, तन तज, जाते
इस कारण विद्या कर्मों का
वृहदारण्यक अंग बताते।

3.4.6

आत्मज्ञान पा करके साधक
जब कर्मों में होते हैं रत
शुभ कर्मों से ईश्वर पाकर
उसमें लय हों, श्रुतियों का मत।

3.4.7 (i)

इच्छा होवे शत वर्षों तक
सुखपूर्वक जो जीवन जीना
आसक्ति तज, कर्मों में रत
उत्तम कर्मों को हैं करना।

3.4.7 (ii)

विद्या केवल अंग कर्म की
उचित कथन है यह इस कारण
जिसने इन भावों को समझा
लिप्त कभी ना हो उसका तन।

3.4.8 (i)

परमेश्वर को पाने के हित
ब्रह्म ज्ञान है वास्तविक साधन
व्यास ऋषि के मत अनुसार
यह कहलाता उत्तम चिन्तन।

3.4.8 (ii)

श्रुतियों द्वारा बार बार जब
ज्ञान श्रेष्ठ होता परिभाषित
ज्ञान नहीं है अंश कर्म का
'पूर्व कथन है पूरा अनुचित।'

3.4.9 (i)

कुछ ज्ञानी त्यागें कर्मों को
कुछ कर्मों में रहते हैं रत
कर्म-रती निष्कामी बनकर
कर्म करें वे सब शास्त्रोचित

3.4.9 (ii)

इन बातों को सम्मुख रखकर
स्पष्ट यही होता निर्देशन

ज्ञान श्रेष्ठतर कर्मों से है
ज्ञान नहीं कर्मों का साधन।

3.4.10

सब विद्याओं के हित में ना –
छंदोग्य वचन करते इंगित
वे केवल उद्‌गीथ ज्ञान को
कहते कर्मों पर आधारित।

3.4.11 (i)

शत[2] मुद्राएं[1] व्यय निमित्त हों
व्यय निमित्त फिर भी हो चिन्तन
श्रुतियों के भावों को भी तो
ऐसा ही समझें ज्ञानी जन।

3.4.11 (ii)

ज्ञान तथा कर्मों अनुरूपी
संस्कारों को ले नर मरता
उनके ही अनुरूप उसे फिर
कोई नूतन जीवन मिलता।

3.4.11 (iii)

पर ज्ञानी नर निज जीवन को
निःसंस्कारी पूरा रखता
उसका ज्ञान कर्म आश्रित ना
उसको मिलती ब्रह्मलीनता।

3.4.12 (i)

ब्रह्मचर्य व्रतधारी मानुष
घर आते जब विद्या पाकर
कर्म करें तब वे सब कैसे?
निर्देशित श्रुतियों के अंदर।

3.4.12 (ii)

ज्ञान कर्म का ही अंशी है
इससे ना निष्कर्ष निकलता
कोई साधक केवल पढ़-लिख
ब्रह्मलीनता ना पा सकता।

3.4.12 (iii)

ब्रह्म प्राप्ति हित सारे साधक
विद्या को अपनाएँ साधन
कर्म करें शुभ, तब ही जाकर
लय हों उसमें जो हैं भगवन।

3.4.13

कर्म करें सब त्यागी मानव
ज्ञानी हित ही ना निर्देशित
श्रुति वचन ये सबके हित हैं
हर मानव से यह आपेक्षित।

3.4.14 (i)

कर्मों के करने हित वर्णन
श्रुतियों में जब जब आता है

ज्ञान प्रशंसित हो इस कारण
यह केवल समझा जाता है।

3.4.14 (ii)

ब्रह्मलीन नर कर्म करे पर-
कर्म लिप्त ना होकर रहता
ज्ञान कर्म का अंग रूप है
सिद्ध नहीं इससे यह होता।

3.4.15

कर्म त्याग कर देते अपने
निज इच्छा से, कुछ ज्ञानी जन
ज्ञान कर्म का अंश नहीं है
सिद्ध तथ्य होवे इस कारण।

3.4.16

ब्रह्मज्ञान से कर्म मिटें सब
श्रुतियों में जो आता वर्णन
अर्थ वहाँ है ज्ञानी का हो
संस्कारों बिन पूरा जीवन।

3.4.17 दोहा

ब्रह्मचर्य व्रत धारकर
पा सकते नर ज्ञान
ज्ञान कर्म अंशी नहीं
वेद करें सम्मान।

3.4.18

सन्यासी बनने का जैमिनी
परामर्श ही देते केवल
अपवादों में ही साधकजन
ले सकता है इसका सम्बल।

3.4.19

व्यास कहें गृहस्थ समान
हर आश्रम का होवे पालन
वेदों में भी हर आश्रम के
धर्मों का मिलता दिग्दर्शन।

3.4.20 (i)

स्त्रुग्दंड के नीचे समिधा
श्रेष्ठ अपूर्व, विध कहलाती
पर देवों हित ऊपर समिधा
श्रेष्ठ समझकर डाली जाती।

3.4.20 (ii)

चारों आश्रम पालन होवें
सब शास्त्रों का ऐसा मत है
सन्यासी बनकर रहना भी
शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित है।

3.4.20 (iii)

जिस आश्रम में भी साधक का
वैरागी हो जाए मन जब

सन्यासी बन जाने के हित
वह ही उत्तम बेला है तब।

3.4.21 (i)

उदीग्थ अवर कर्मांगों हित
जिस का श्रुतियों में है वर्णन
स्तुति–मात्र जो इनको कहते
उचित नहीं उनका सम्बोधन।

3.4.21 (ii)

अन्यत्र कहीं भी ऐसा वर्णन
ना अनुमान कहीं भी आया
रसोतत्व आदिक गुण इनके
लयकारक हैं यह बतलाया।

3.4.22 (i)

कैसे करनी होती पूजा
विधि वाक्य करते यह इंगित
क्या क्या इनका फल मिलता है
उनसे भी करवाते परिचित।

3.4.22 (ii) दोहा

कर्म ज़रूरी ही नहीं
उदगीथ स्तुति नमिति
ज्ञान कर्म अंशी नहीं
श्रुतियों का यह मत।

3.4.23

उपनिषदों में कितने ही तो
आक्षानों का मिलता वर्णन
परिप्लव[2] ना इनमें सारे
कुछ ही परिप्लव सम साधन।

3.4.24

शेष कथाएँ उनमें सारी
परिप्लव अर्थक ना किंचित
कर्मों का भी अंग नहीं वे
ब्रह्मज्ञान से वे सम्बन्धित।

3.4.25

ब्रह्मज्ञान ही परम ज्ञान है
सिद्ध करे अब तक का चिन्तन
ईश्वर चिन्तन मुख्य विषय है
घृत आदिक सब गौणी साधन।

3.4.26 (i)

ब्रह्मज्ञान हित कर्म आवश्यक
हर आश्रम में करने होते
साधक ईश्वर पाने का हित
ज्ञान बिना भी सम्भव करते।

3.4.26 (ii)

देव भोग हित घोड़े पर चढ़
मंदिर तक जा सकता योगी

पर प्रसाद का भोग लगाने
घोड़े ना होते उपयोगी।

3.4.27

सिद्धि हित में चाहे कोई
आवश्यक ना होवें बंधन
ब्रह्मज्ञान हित शम, दम आधिक
अपनाने होंगे सब साधन।

3.4.28

क्या खाएँ क्या ना खाएँ हम
इसका श्रुतियाँ करती चिन्तन
पर प्राणों की रक्षा के हित
अनुचित खाने का भी वर्णन।

3.4.29

कोई बाधा ना होवे तो
दूषित चीजों को ना खाओ
मान्य सत्य है साधारणता
शुद्ध अन्न को ही अपनाओ।

3.4.30

प्राणों की रक्षा करने हित
अन्न कहीं का भी खा सकते
पाप नहीं तब कोई होता
वेद वचन भी ऐसा कहते।

3.4.31

दूषित अन्न कहीं पर भी हो
कोई स्वेच्छा से ना खाए
श्रुतियों ने अपने वचनों में
श्रेष्ठ वचन ऐसे बतलाए।

3.4.32

ब्रह्म प्राप्त करने के हित में
कर्म करें सब शम, दम आदिक
आश्रम के सब कर्मों को भी
सबको करना है मरने तक।

3.4.33

निष्कामी रहकर कर्मों को-
करने से बनते सब निर्भय
ज्ञानी की भी मदद करें ये
ईश्वर में हो जाने को लय।

3.4.34 (i)

आसक्ति-सहित अज्ञानी नर
जैसे कर्म करें सम्पादन
वैसे ही निष्कामी रह कर
कर्म युक्त हों सब ज्ञानी जन।

3.4.34 (ii)

आध्यात्मिक औ निर्धारित सब
कर्मों को करना है निश्चित

श्रोत स्मार्त सारे ग्रन्थों में
ऐसा ज्ञान हुआ है संचित।

3.4.35 दोहा

जब साधक ज्ञानी बने
मिटते सब संस्कार
पाप मुक्त जीवन रहे
परम पुरुष दें प्यार।

3.4.36 दोहा

वर्ण व्यवस्था के बिना
मिल सकता सब ज्ञान
परमेश्वर के धाम में
पा सकते सब स्थान।

3.4.37 दोहा

शास्त्रों ने समुचित दिया
यह पावन विज्ञान
सन्यास बिना भी मिल सके
ऊँचा श्रेष्ठ स्थान।

3.4.38 दोहा

जो सब आश्रम त्याग कर
भक्ति करे दिन रैन
योग, क्षेम उस भक्त का
ईश्वर करते वहन।

3.4.39 दोहा

जो कुछ भी अब तक कहा
श्रेष्ठ भक्ति का स्थान
लक्षण भी लक्षित करें
यही श्रेष्ठतम ज्ञान।

3.4.40

ऊँचा आश्रम त्यागकर
गिरे नहीं इन्सान
जैमिनी के इस वचन का
शास्त्र करें सम्मान।

3.4.41 दोहा

ऊँचा आश्रम त्यागना
अधोपतन की बात
प्रायश्चित इसका नहीं
कहलाता उत्पात।

3.4.42 (i) दोहा (शंका)

अभक्ष भक्ष जब कर सकें
आपत में इन्सान
गलती कर उठना उचित
जब हो जावे ज्ञान।

3.4.42 (ii) दोहा

ऐसों को कुछ मानते
उपपातक[3] इन्सान

जो मांगें माफी अगर
क्षमा करें विद्वान।

3.4.43 उत्तर

जैमिनी मत अनुसार त्याज्य ये
त्यागे इनको सारी जनता
शास्त्र कहें ऐसा ना करके
सारा राष्ट्र भ्रष्ट हो सकता।

3.4.44

यज्ञ करे जब ऋत्विक कोई
फल यजमानों को ही मिलता
आत्रेय कहें ऋत्विक सब कुछ-
यजमानों के हित में करता।

3.4.45

ओडुलोमि कहते ऋत्विक जब -
दान, यजन, हित करते सेवा
इन याज्ञिक कर्मों के फल का
यजमानों को मिलता मेवा।

3.4.46

श्रुतियों में यह कथन है
उनको यह स्वीकार
कारज जो ऋत्विक करें
उनका ना अधिकार।

3.4.47

मोक्ष-अकांक्षी ज्ञानी का हो
बाल सुलभ सा सात्विक जीवन
मौन साधना उस की होवे
जो तीजा है विधिसम्मत गुण।

3.4.48 (i)

गृहस्थ जिसे कहते उसमें
हर आश्रम का भाव समाया
इस कारण से ब्रह्मज्ञान का
अधिकारी सबको ही पाया।

3.4.48 (ii)

जिस भी आश्रम में साधक हो-
पा सकता है ब्रह्मज्ञान वह
पर सन्यासी सहज भाव से
परमेश्वर में हो सकता लय।

3.4.49

हर आश्रम हित श्रुति ग्रंथ सब
मनन शील रहने को कहते
ब्रह्म प्राप्ति हित उसी तरह से
सबको अधिकारी बतलाते।

3.4.50

अभिमान रहित सहज, सरलता
ये सब हैं बालक के सद्गुण।

ये गुण अपना, साधक त्यागें -
राग, द्वेष आदिक सब दुर्गुण।

3.4.51 (i)

जो कुछ भी मानव करता है
उसका फल निश्चित मिल जाए
इसी जन्म में यह सम्भव है
अगर कहीं बाधा ना आए।

3.4.51 (ii)

कर्म फलित ना हों जीवन में
तो अगले जन्मों में फलते
श्रोत स्मार्त ग्रन्थों में इसके
बहुत बार वर्णन हैं मिलते।

3.4.52 (i)

ब्रह्मज्ञान का फल है मुक्ति
सब श्रुतियाँ यह करतीं इंगित
पर ऐसा कब हो पाएगा
समय नहीं इसका कुछ सीमित।

3.4.52 (ii)

ऐसा सम्भव तब होवेगा
जब हर इच्छा मिट जाएगी
इस जीवन में या अगले में
परम अवस्था यह आएगी।

॥ इति अध्याय तीन, पाद चार ॥

संदर्भ

1. शत मुद्राए = अतुलित धन
2. पारिप्लव = नौका
3. उपपातक = छोटा

अध्याय - चार

पाद - एक

विषय सूची

- ब्रह्मज्ञान बार बार अभ्यास करने से प्राप्त होता है। 1
- यही बात स्मार्त ग्रंथ भी कहते हैं। 2
- मैं आत्मा हूँ काया नहीं, ज्ञानी को समझना चाहिए। 3
- प्रतीक को ईश्वर न समझें। प्रतीक में ईश्वर है, यह मानना चाहिए। 4
- ईश्वर सर्वश्रेष्ठ है, सब प्रतीकों में हैं। 5
- सूर्यादि देवों में उदीग्थ भाव समझना चाहिए और पूजन करना चाहिए। छोटे देवों में बड़े (उच्चतर) देवों का भाव समझना शास्त्र सम्मत है। 6
- ईश्वर का ध्यान बैठकर करना चाहिए, चलते फिरते नहीं, करना चाहिए। चलते फिरते करने से ध्यान नहीं लगता। 7
- ध्यान बहुत आवश्यक है। इससे ही लय अवस्था की सम्भावना बनती है। 8
- ध्यान में निश्चल रहना चाहिए। 9
- ध्यान करते समय शिर ग्रीवा, कमर सीधी हों। 10
- ध्यान के लिए किसी विशेष स्थान की आवश्यकता नहीं। जहां बैठकर मन लग जाए वही स्थान ठीक है पर वह स्थान स्वच्छ

होना चाहिए। 11

- ध्यान की क्रिया मरते दम तक करनी चाहिए। 12
- ध्यान से आत्मा पर से संस्कारों की परतें हटती हैं। 13
- ध्यान से अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के संस्कार मिट जाते हैं। 14
- जो भोग प्रारब्ध बन जाएं उन्हें भोगना ही पड़ता है। 15
- आश्रम सम्मत अग्निहोत्र आदि कर्म तो करने ही हैं। 16,
- एक शाखा के अनुसार कर्मों से ही अमृत रूप ईश्वर मिल सकता है। 17
- बुद्धि से युक्त होकर सब कर्म करो।18
- प्रारब्ध कर्मों का जब तक नाश नहीं होता अर्थात जब तक प्रारब्ध कर्मों का भोग नहीं हो जाता तब तक लय अवस्था नहीं आती। 19

अध्याय - तीन

पाद एक

4.1.1 दोहा

ब्रह्म प्राप्त करना बने
जीवन का उद्येश्य
बार बार अभ्यास हो
श्रुतियों का निर्देश।

4.1.2

स्मार्त ग्रन्थ भी जितने मिलते
उन का भी ऐसा चिन्तन है
ईश्वर में लय हो जाने का
ओर नहीं कोई साधन है।

4.1.3

मैं आत्मा हूँ मैं ना काया
मैं काया के अंदर रहता
परमेश्वर आत्मा का आत्मा
श्रुतियों में ऐसा ही आता।

4.1.4 (i)

आत्मभाव[1] जो रखकर कोई
पूजे सूरज, नभ, औ निज मन
वह ईश्वर की पूजा ना कर
वह प्रतीक का करता पूजन।

4.1.4 (ii) दोहा

आत्मभाव प्रतीक में
करें नहीं समावेश
ऐसे जिनके भाव ना
मिलें नहीं परमेश।

4.1.5

परमेश्वर ही सर्वश्रेष्ठ है
सहज समझ में ना वह आता
सभी प्रतीकों में ईश्वर है
इसी सोच से पूजा जाता।

4.1.6

उदगीथ समझकर सूरज पूजें
जिससे सारा जगत रचित है
छोटे देवों में गुरुतर का
भाव समझना शास्त्रोचित है।

4.1.7

चलते, फिरते, या सो करके
ईश्वर पूजन ना हो सकता

सहज बैठकर ही ईश्वर का
ध्यान मनन है सम्भव बनता।

4.1.8

ध्यान बहुत आवश्यक होता
जिस ने करनी होती पूजा
ईश्वर में लय हो जाने का
और सरलतर ना मग दूजा।

4.1.9

हिलना तजकर स्थिर बैठें नर
किसी एक आसन के अंदर
निश्चल मन से ध्यान लगे तो
मिल जाएगें तब सर्वेश्वर।

4.1.10 दोहा

पूजा के हित स्मार्त ग्रंथ
कहते बारम्बार
शिर ग्रीवा सीधी रहे
स्मरण करो करतार।

4.1.11

स्थान विशेष नहीं आवश्यक
शास्त्रों ने बोला पूजा हित
जहाँ बैठकर मन लग जाए
उचित स्थान वह, उनका है मत।

4.1.12

जहां कहीं भी शुद्ध जगह हो
औ एकाग्रित हो जाए मन
वहीं बैठकर पूजा कर लो
श्रुतियों द्वारा ना है बन्धन।

4.1.13 (i)

आत्मा पर जो संस्कारों की
परतें जम करके रहती हैं
ध्यान क्रिया के द्वारा सारी
वे परतें उससे हटती हैं।

4.1.13 (ii)

संस्कार नहीं जीवात्मा को-
फिर कोई भी छू पाएगा
भूत, भविष्यत, वर्तमान के
पापों से मुक्ति पाएगा।

4.1.14

ईश्वर पूजा से साधक के
पापों पुण्यों के फल मिटते
ऐसे साधक परमेश्वर में
देहपात करने पर मिलते।

4.1.15 (i) दोहा

ईश्वर पूजन से कटे
पाप, पुण्य की बेल

पर केवल वह बेल ही
जिसका शुरू न खेल।

4.1.15 (ii) दोहा

प्रारब्ध बनें सकल जो
भोगे मानव भोग
इन भोगों को भोगने
जीवित रहते लोग।

4.1.16 (i) दोहा

आश्रम सम्मत कर्म सब
त्यागें ना विद्वान
अग्निहोत्र आदिक कर्म
करते रहें सुजान।

4.1.16 (ii) दोहा

विहित कर्म करते रहो
यही सुझाया ज्ञान
गीता में भी यह कहा
स्वयं कृष्ण भगवान।

4.1.17

अन्य विहित कारज हैं जिनको
ज्ञानी जीवन भर करता है
एक शास्त्र अनुसार कर्म से
साधक को अमृत मिलता है

4.1.18 (i) दोहा

धी युत हो सारे करें
अपने अपने काम
पर उत्तम वे तब बनें
जब होवें निष्काम।

4.1.18 (ii)

कर्मांगी उदगीथ विषय हित
ऐसा यह वर्णन आया है
यह कर्मों से सम्बन्धित है
ब्रह्मज्ञान ना कहलाया है।

4.1.19

मिटती है प्रारब्ध तब -
मिटते जब सब भोग
मिल सकते फिर तब कहीं
परमेश्वर से लोग।

॥ इति अध्याय चार, पाद एक ॥

संदर्भ

आत्मभाव = प्रतीक ईश्वर है।

अध्याय - चार

पाद - दो

विषय-सूची

- मरने के समय मानव की वाणी उसके मन में स्थिर हो जाती है। 1
- अन्य इन्द्रियाँ भी मन में स्थिर हो जाती हैं। 2
- मन और इन्द्रियां प्राण में स्थिर होती हैं। 3
- प्राण आत्मा में स्थिर हो जाता है। 4
- प्राण, मन, इन्द्रियों के सहित आत्मा पांचों सूक्ष्म भूतों में स्थिर होती है। 5
- केवल तेज तत्व में ये स्थिर नहीं होतीं। 6
- यहाँ तक का मार्ग सब आत्माओं के लिए एक समान है। यहाँ से जिन्होंने फिर जीवन पाना है वे जीव लोक में आ जाती हैं और जिन्होंने ब्रह्म लोक में जाना होता है, वे ब्रह्म लोक में चली जाती हैं। 7
- साधारण मनुष्यों को मुक्त अवस्था प्राप्त होने तक सूक्ष्म शरीर उपलब्ध रहता है। 8
- आत्मा शरीर के मरने पर, मन इन्द्रियों सहित सूक्ष्म भूतों को धारण करती है, जो उसका सूक्ष्म शरीर ही है। 9
- दाह संस्कार से सूक्ष्म शरीर का नाश नहीं होता। 10

- हमारे शरीर की उष्णता कारण-शरीर के कारण है। 11
- आत्मा और काया का संघ स्थाई नहीं है। यह टूटता ही है पर आत्मा और प्राण का बन्धन लय अवस्था में भी रहता है। 12
- मरने के बाद प्राण आत्मा को धारण करता है। आप्तकाम पुरुष प्राणों के संग ब्रह्मलीन हो जाता है। उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते। 13
- आत्मा के गमन करने का वर्णन श्रुतियों में आता है वह आत्मा का सूक्ष्म भूतों के संग का गमन करने का वर्णन है। 14
- ब्रह्मधाम के अधिकारी जब ब्रह्म में लय होते हैं तो उनका ब्रह्म से विभाग नहीं रहता। 15
- ब्रह्मधाम में आकर साधारण पुरुष अपने भोग भोग कर वापिस जीव लोक में आता है। 16
- मरते समय ब्रह्मज्ञानी के हृदय का अग्र भाग प्रकाशित हो जाता है और वह अपनी सुषुम्णा नाड़ी के मग से शरीर का त्याग करता है। 17
- ब्रह्मज्ञानी की आत्मा सूर्यलोक से ब्रह्मलोक को जाती है पर साधारण लोगों के लिए सूर्यलोक और ब्रह्मलोक के बीच का रास्ता बंद रहता है। 18
- हमारी हर नस नाड़ी में जो ऊर्जा है वह सूर्य की है। इसलिए कोई रात्री को मरे या दिन में, कोई सूर्य की उतरायण दिशा के समय मरे या दक्षिणायण दिशा के समय इसके कारण सद्‌गति या दुर्गति नहीं होती। 19
- कहीं भी कभी भी मरने पर ब्रह्मज्ञानी को सद्‌गति ही मिलती है। वह देवयान भग अपनाए या पितृयान भग। 20-21

अध्याय - चार

पाद दो

4.2.1

मरण समय मानव की वाणी
मन अन्दर स्थिर हो जाती है
प्रत्यक्ष देख कर या वेदों से
बात समझ में यह आती है।

4.2.2

मर जाने पर जब वाणी यूँ
स्थापित हो जाती मन अंदर
अन्य करण भी तब मन अंदर
स्थापित हो जातीं हैं आकर।

4.2.3 दोहा

करण, मन, विषयों निमित
बतलाया यह ज्ञान
भीतर आकर प्राण के
लेते अपना स्थान।

4.2.4

मुख्य प्राण, मन, करण साथ ले
जब नर अपना तन तज देता
अपने स्वामी आत्मा में वह
पूर्ण शरण तब आकर लेता।

4.2.5

आत्मा मन औ सकल करण का
मरने पर हो तेज रूपांतर
सूक्षम-भूत बनें ये फिर सब
सूक्षम भूतों में ये मिलकर।

4.2.6

तेज रूप ले आत्मा केवल
ऐसा चिन्तन करना अनुचित
पांचों सूक्षम भूतों अंदर
आत्मा होता पूर्ण समाहित।

4.2.7

ब्रह्मलोक में जाना हो या
जिस को लेना हो फिर जीवन
सूक्षम काया का आत्मा को
लेना पड़ता है अवलम्बन।

4.2.8

जन्म मरण के इस चिन्तन से
तत्व समझ में यह ही आता

मुक्त अवस्था के होने तक
सूक्ष्म तन की रहती सत्ता।

4.2.9

मरण अनन्तर जिन भूतों में
जीवात्मा होता स्थापित है
वे सारे सूक्षम होते हैं
ऐसा श्रुतियों में वर्णित है।

4.2.10

भूत सभी वे सूक्षम होते
इस कारण जब काया मरती
दाह आदि कर देने पर भी
क्षरण, मरण ना आत्मा होती।

4.2.11

जीवित काया के अंदर जो
गर्मी होती सब को अनुभव
तर्कों द्वारा स्पष्ट यही हो
यह सूक्षम तन कारण सम्भव।

4.2.12 (i)

प्रतिषेध[1] निमित जो श्रुति वचन हैं
अर्थ यही बस उन का बनता
आत्मा औ काया का रिश्ता
निश्चित है, यह टूटा करता।

4.2.12 (ii)

भौतिक तन आत्मा का बन्धन
मरने पर पूरा कट जाता
पर लय होकर भी जीवात्मा
निज प्राणों से जुड़कर रहता।

4.2.13 (i)

एक ज्ञान शाखा वाले तो
स्पष्ट बताते हैं यह नियमन
काया मरने पर आत्मा को
प्राण स्वयं करते हैं धारण।

4.2.13 (ii) दोहा

आप्त[2] काम के प्राण ना–
करें कभी उत्क्रमण[3]
ब्रह्मलीनता के समय
करें कहीं ना गमन।

4.2.14 (i)

गमन नमित आत्मा के हित जो
वर्णन मिलता जहाँ तहाँ है
वहाँ वहां हित श्रुतियाँ कहतीं
गमन करे भूतों को ले कर।

4.2.14 (ii)

वेदों शास्त्रों ने बोला है
ब्रह्मधाम के अधिकारीगण

जीवन में ही ईश प्राप्तकर
लय होते ईश्वर में तत्क्षण।

4.2.15

ब्रह्मधाम अधिकारी जो हों
त्यागें अपना वे जीवन जब
सब भूतों को ले लय होते
निर्विभाग परमेश्वर में तब।

4.2.16 (i)

ज्ञानी मानव का मरने पर
नामरूप पूरा मिट जाता
प्रश्न तथा कितनी श्रुतियों के
वर्णन में ऐसा ही आता।

4.2.16 (ii)

पर साधारण नर कर्मों संग
ब्रह्मधाम में तो आ जाता
शुभ कर्मों के भोग अनन्तर
वह फिर नूतन तन अपनाता।

4.2.17 (i)

देह त्याग जब करता ज्ञानी
अग्र भाग हिय का हो ज्योतित
ईश कृपा से उस ज्ञानी की
मरण क्रिया हो ऐसे विधिवत्।

4.2.17 (ii)

शत अरु एक नाड़ियाँ हिय में
एक सुषुम्णा ऊर्ध्व जाती
आलोकित वह होवे नाड़ी
आत्मा वह ही मग अपनाती।

4.2.18 (i)

सूरज की किरणों में स्थित हो
आत्मा जाता ऊपर ऊपर
सूर्यलोक में पहुँच वहाँ से
ब्रह्मलोक में पहुँचे जाकर।

4.2.18 (ii)

सूर्यलोक से ब्रह्मलोक का
द्वारा बंद रहा करता है
पर ज्ञानी के हित वह द्वारा
फिर फिर से खुलता रहता है।

4.2.19 (i)

जो रात्री में मरते उनका
बिन सूरज के क्या है होता
इस शंका का उत्तर यह है
हर नाड़ी में सूरज रहता।

4.2.19 (ii)

नाड़ी से निकृत ऊर्जा भी
सूरज से होती सम्बन्धित

इस कारण रात्री में मरकर

दुर्गति ना मिलती है अनुचित।

4.2.20

सूरज दक्षिणगामी भी हो

कोई ज्ञानी जब तब मरता

बाधित उस का मग ना होवे

परम धाम में वह आ रहता।

4.2.21

देव यान औ पितृयान मग

जो ये सद्ग्रन्थों में आए

दोनों ही मग ये शास्त्रों के

योगी हित हैं 'स्मार्त' बताए।

॥ इति अध्याय चार, पाद दो ॥

संदर्भ :

1. प्रतिषेध = खंडन - ब्रह्मलोक में जाने का खंडन - भौतिक शरीर के साथ वहाँ जाना संभव नहीं है।
2. आप्त काम = जिसकी सब कामनाएँ पूर्ण हो गई हैं।
3. उत्क्रमण = उल्लंघन।

अध्याय - चार

पाद - तीन

विषय सूची

- ज्ञानी अर्ची मार्ग से ब्रह्मलोक में पहुँचता है। इसी मार्ग को देवयान और पितृयान मार्ग के नाम से जाना जाता है। 1
- सबसे पहले संवत सर (संवत सर के अंग-दिन, दिन के बाद शुक्ल पक्ष - फिर उतरायण को फिर संवत सर) को प्राप्त होता है। फिर सूर्यलोक को प्राप्त होता है। वायुलोक का वर्णन किसी श्रुति में सामान्य क्रम में और किसी श्रुति में विशेष क्रम में आता है। 2
- वायुलोक के उपरांत तड़ितलोक और फिर वरुणलोक आता है। सब लोकों का आपस में घना सम्बन्ध है। 3
- हर साधक को, जिस लोक में वह जाता है, वहाँ वही मिलता है जिसका वह अधिकारी होता है। 4
- देवयान आदि मार्ग जड़ रूप नहीं। ये आत्मा के वाहक हैं इसलिए जड़ नहीं हो सकते वे सब देव हैं। 5
- उसके बाद तड़ितलोक है वहाँ अमानव पुरुष प्रकट होता है जो आत्मा को ब्रह्मलोक तक ले जाता है। इस मार्ग में जिस जिस देवता का लोक आता है, वे देवता उसको रास्ता दे देते हैं। 6
- बादरिका ऋषि का मत है आत्मा कार्यब्रह्म तक जाती है। 7

- अमानव- आत्मा को ब्रह्मलोक तक ले जाता है। ब्रह्मलोक परम ब्रह्म नहीं है। 8
- ईश्वर ने सर्वप्रथम कार्य-ब्रह्म का निर्माण किया। 9
- प्रलय के समय ब्रह्म भी नष्ट हो जाता है। 10
- प्रलय का वर्णन स्मृति ग्रंथ ऐसा ही करते हैं। 11
- जैमिनी ऋषि ने ब्रह्म शब्द से परमब्रह्म ही वर्णित होता है, ऐसा कहते हैं। 12
- श्रुतियों में जिस अमृत तक जाने की बात कही है वह परम ब्रह्म ही है। 13
- ज्ञानी का ध्येय कार्यब्रह्म की प्राप्ति नहीं परमब्रह्म की प्राप्ति है। 14
- साधक अपने प्रयासों से, प्रयासों के अनुरूप, कार्यब्रह्म या परमब्रह्म को प्राप्त करता है। 15
- जिसका संकल्प जैसा हो, उसके अनुरूप वह फल प्राप्त करता है। 16

अध्याय - चार

पाद - तीन

4.3.1

अर्चिमार्ग से बढ़कर ज्ञानी -
ब्रह्मलोक में फिर आता है
देवयान औ पितृयान मग
यह मग ही जाना जाता है।

4.3.2

संवत्सर उपरान्त लोक हैं
वायु अवर फिर सूरज वर्णित
सामान्य अवर विशेष भाव से
वायुलोक श्रुतियों में चित्रित।

4.3.3

वायुलोक जब पार करें तब
तड़ित क्षेत्र का हो अवलोकन
उसके ऊपर वरुणलोक है
सम्बन्ध घना है इनमें पावन।

4.3.4

साधक को इन सब लोकों में
ले जाने के रहते साधन
हर साधक को वह मिलता है
जैसे होते उसके लक्षण।

4.3.5

यह साधन ना जड़ हो सकते
देव स्वयं ये कहलाते हैं
उच्च लोक में आत्माओं को
स्वयमेव ये ले जाते हैं।

4.3.6 (i)

उसके आगे जाकर मिलता
तड़ितलोक का देव अमानव
जिसके द्वारा आत्मा का फिर
ब्रह्मलोक में जाना सम्भव।

4.3.6 (ii)

जितने लोक बीच में आते
देव वहां के मग दे देते
उनका कारज सहयोगी का
वे सहयोगी बनकर रहते।

4.3.7 (i)

बादरिका का मत ऐसा है
आत्मा कार्यब्रह्म तक जाता

कार्यब्रह्म के इस चिन्तन में
परमेश्वर ना लक्षित रहता।

4.3.7 (ii)

परमेश्वर को पाना कैसा
परमेश्वर तो सर्वव्यापक
कार्यब्रह्म को ही पाने हित
यतन किया जाता है अनथक।

4.3.8 (i)

श्रुति अमानव के हित कहती
ब्रह्मलोक आत्मा पहुंचाता
परम ब्रह्म परमेश्वर में वह
लय करवाए ना बतलाता।

4.3.8 (ii)

श्रुति वचन में ब्रह्मलोक हित
बहुल वचन उपयोग किया है
वह सब लोकों का स्वामी है
कार्यब्रह्म ही दर्शाया है।

4.3.9 (i) दोहा

रचना जब जग की करी
श्रुतियाँ दें यह ज्ञान
कार्यब्रह्म को प्रथमता
ईश किया निर्माण।

4.3.9 (ii) दोहा

ब्रह्मलोक समझो उसे
जो ब्रह्मा का धाम
जीव वहाँ तक पहुँचता
वाहक करता काम।

4.3.10

कार्यरूप (यह ब्रह्मलोक) भी
मिटता प्रलय समय आए जब
ईश्वर में ही लय हो जाते
ब्रह्मा औ उससे शासित सब।

4.3.11

प्रलय समय का वर्णन सारे
स्मार्त ग्रन्थ भी करते ऐसा
ऊपर वर्णन जैसा आया
वे सब समझाते हैं वैसा।

4.3.12

शब्दब्रह्म के मुख्य अर्थ को
जैमिनि परमंब्रह्म समझाते
अर्चि समान मगों के साधक
परमब्रह्म अन्तर्गत आते।

4.3.13

अमृत तक आत्मा जाता है
ऐसा श्रुतियों का दर्शन है

कार्य ब्रह्म ना इसमें इंगित
परमब्रह्म का यह वर्णन है।

4.3.14

परमब्रह्म की इच्छा ही से
ज्ञानी करते हैं सब साधन
कार्यब्रह्म ना ध्येय किसी का
सबका ध्येय स्वयं परमात्मन।

4.3.15 (i)

परमब्रह्म परमेश्वर का औ
कुछ प्रतीक का करते पूजन
दोनों ही इन पूजाओं हित
व्यास ऋषि करते यूँ वर्णन

4.3.15 (ii)

श्रुति अमानव जिस को बोले
परमब्रह्म तक वह ले जाए
पर जो कार्य ब्रह्म के साधक
उनको कार्य ब्रह्म तक लाए।

4.3.15 (iii)

साधक अपनी ही इच्छा से
पूजाओं का साधन करता
परमधाम या कार्यब्रह्म तक
अपने कर्मों द्वारा जाता।

4.3.16

जैसा जो संकल्प करेगा
वैसे लोकों में वह जाए
श्रुतियों में इसके सम्बन्धित
मंत्र बहुत सारे हैं आए।

॥ इति अध्याय चार, पाद तीन ॥

संदर्भ

अमानव – सूक्ष्म शरीर जो आत्मा को लेकर जाते हैं।

अध्याय - चार

पाद - चार

विषय सूची

- ईश्वर में लय होकर आत्मा अपने असली रूप में आ जाती है। 1
- लय होने पर आत्मा के सारे बन्धन टूट जाते हैं। 2
- जब आत्मा ईश्वर में लय हो जाती है तो वह ईश्वर बन जाती है उसके सब बन्धन कट जाते हैं। 3
- वह ईश्वर में ऐसे मिल जाती है जैसे नदी का पानी सागर में मिलता है। 4
- श्रोत ग्रन्थों का, गीता का और जैमिनी ऋषि का यह मत है कि साधक मुक्त अवस्था के समय ईश्वर जैसा बनता है। 5
- मूल रूप में आत्मा में चेतनता रहती है, उस समय यह कोई संकल्प नहीं करती ये विचार ओडुलोमि ऋषि के है। 6
- यही बात जैमिनि ऋषि भी कहते हैं। 7
- आत्मा ब्रह्मलोक में अपने मन के द्वारा सारे भोगों को भोग लेती है। 8
- मुक्त आत्मा का स्वामी केवल ईश्वर है। 9
- मुक्त आत्मा की देह, इन्द्रियां नहीं होतीं। यह बादरी ऋषि और श्रुति के विचार हैं। 10
- छांदोग्योपनिषद् का मत है कि आत्मा नाना भावों से युक्त होती है इसका अर्थ है आत्मा शरीर युक्त होती है। 11

- व्यास ऋषि आत्मा को शरीरधारी और बिना शरीर दोनों प्रकार का मानते हैं। 12
- स्वप्न अवस्था में आत्मा शरीर के बिना ही सब भोग करती है। वैसे ही ब्रह्मधाम में आत्मा बिना शरीर के सब भोगों को भोग करती है। 13
- आत्मा जब जब शरीर धारण करती है तब उसे ऐसा अनुभव होता है कि वह सोई हुई थी और अब जागी है। जो आत्माएँ ब्रह्मलोक में काया के साथ रहती हैं, वे वहाँ धरती पर कायाधारी जीवों जैसा व्यवहार करती हैं। 14
- ब्रह्मलीन आत्मा अपने संकल्प से भिन्न भिन्न रूप धार सकती है। उनमें प्रविष्ट होकर उनसे दिव्य भोगों को भोग सकती है। 15
- सुषुप्ति अवस्था में साधक को कोई ज्ञान नहीं रहता। ऐसी ही अवस्था साधक की प्रलय काल में होती है। सागर में नदी के मिलने का जो वर्णन है, वह लय अवस्था का है। लय हुई आत्मा अनेक शरीर धारण कर सकती है और दिव्य भोगों का भोग कर सकती है। 16
- जगत की उत्पति, जगत का संहारण केवल परमात्मा कर सकते हैं, कोई भी आत्मा नहीं। 17
- लय हुई आत्मा सब कार्य करने में स्वतंत्र है पर जगत रचना का कार्य स्वयं ब्रह्मा करते हैं। 18
- मोक्ष प्राप्त आत्मा व्यापक हो जाती है। वह आनन्द प्राप्त करती है। 19
- आत्मा ब्रह्म में लय होकर ब्रह्म बन जग की रचना नहीं करती पर वह जहां चाहे भ्रमण करे जो चाहे भोग भोगे। 20
- ब्रह्मधाम में आत्मा दिव्य भोगों का भोग करती है पर जग रचना नहीं। 21
- लय अवस्था प्राप्त करने पर आत्मा फिर जीवन नहीं पाती। 22।

अध्याय - चार

पाद - चार

4.4.1

अपनी काया से ऊपर उठ
परमधाम जब आत्मा आती
ईश्वर में लय हो करके वह
असल रूप अपना अपनाती।

4.4.2

प्रतिपादित यह श्रुतियाँ करतीं
जब ईश्वर में आत्मा आए
सारे उसके बन्धन छूटें
वह ईश्वर में लय जो जाए।

4.4.3

जब आत्मा ईश्वर में लय हो
वह बन जाया करती ईश्वर
सारे उसके बन्धन कटते
दोनों में ना रहता अन्तर।

4.4.4

जैसे नदियाँ सागर पाकर
बन जाया करती हैं सागर
मुक्त हुई सब आत्माएं भी
ईश्वर बनती ईश्वर पाकर।

4.4.5

ईश्वर जैसा बनता साधक
जब वह होवे ब्रह्मज्ञान रत
श्रोत, स्मार्त-गीता ग्रन्थों औ
ऋषि जैमिनी का भी यह मत।

4.4.6

अपने मूल रूप में आत्मा
चेतनता से युत है रहती
कोई तब संकल्प करे ना
ओडुलोमि शिक्षा बतलाती।

4.4.7

पूर्व बताए सिद्धान्तों में
जैसे यह वर्णन है आया
जैमिनि मत औ ओडुलेमि ने
आत्मा को वैसे समझाया।

4.4.8

मन रूपी नेत्रों से आत्मा
ब्रह्मलोक करती अवलोकन

संकल्पों सम उसको मिलते
दिव्य भोग सुख, दु:ख के साधन।

4.4.9

और स्वराज्य प्राप्त करके जब
आत्मा स्वयं मुक्त हो जाए
ब्रह्म बिना कोई भी स्वामी
उस आत्मा का ना कहलाए।

4.4.10

'बादरि' यह उपदेश हमें दे
श्रुतियाँ भी यह ज्ञान सुझातीं-
मुक्त सभी जो आत्माएँ हों
देह करण ना कोई पातीं।

4.4.11

हर मुक्तात्मा भावों युत हो
छांदोग्य हमें यह समझाया
सिद्ध यही इससे होता है
आत्मा ना रहती बिन काया।

4.4.12

निज संकल्पों के सम आत्मा
तन ले रहती या तन बिन है
व्यास ऋषि ने आत्मा के हित
समझाया उपरोक्त वचन है।

4.4.13 दोहा

स्वप्नों में काया बिना
जैसे भोगे भोग
ब्रह्मधाम में जीव यूं
करता सब उपयोग।

4.4.14 (i)

जैमिनी कहते मुक्तात्मा को
ब्रह्मलोक में काया मिलती
साधारण जीवों के सम ही
आत्मा उसमें वैसे रहती।

4.4.14 (ii)

काया अपना करके जो भी
ब्रह्मलोक में आत्मा रहती
कायाधारी जीवों जैसा
सब व्यवहारों को वह करती।

4.4.15 (i)

दीपक की लौ हर दिक जाकर
जैसे निज आलौक बखेरे
ब्रह्मलीन भी वैसे घूमें
रूप सजा करके बहुतेरे।

4.4.15 (ii)

श्रुतियों में बतलाया, आत्मा-
बहु रूपों को धारण करती

जिस काया में भी रहती वह
उस अनुरूपी भोग भोगती।

4.4.16 (i)

सुषुप्ति अवस्था के होने पर
ज्ञान नहीं प्राणी को रहता
प्रलय काल में भी हर प्राणी
इसी अवस्था को अपनाता।

4.4.16 (ii)

परमेश्वर में लय होने पर
आत्मा उसमें ऐसे मिलती
जैसे नदियाँ सागर में मिल
सागर का ही जल सब बनतीं।

4.4.16 (iii)

परमेश्वर में लय आत्मा को
मिल सकते हैं दिव्य भोग सब
सब लोकों में वह जा सकती
जिधर करे उसकी इच्छा जब।

4.4.17 (i)

जग रचने का कोई कारज
ना कर सकती है जीवात्मा
ऐसे कारज केवल करते
जो हैं परम-ब्रह्म परमात्मा।

4.4.17 (ii)

जग रचते केवल परमेश्वर
श्रुतियों में ऐसी अभिव्यक्ति
अन्य सकल कारज करने की
जीवात्मा में होती शक्ति।

4.4.18 (i)

श्रुतियाँ कहतीं ब्रह्मधाम में
आत्मा इच्छित कारज करती
जहाँ कहीं उसकी इच्छा हो
भ्रमण निमित वह आ जा सकती।

4.4.18 (i)

भोग वहाँ के सब वह भोगे
सब लोकों में आए, जाए
पर इसका यह अर्थ नहीं है
जग रचना का काज रचाए।

4.4.19

मोक्ष प्राप्त करके जीवात्मा
दोष रहित पाए व्यापक्ता
वह आनन्दी बनकर रहती
यह ही उसकी है सार्थकता।

4.4.20 (i)

श्रोत्र, स्मार्त ग्रन्थों में वर्णित
आत्मा बनती मुक्तात्मा जब

यह ईश्वर ना बन जाती है
ना करती उस सम कारज तब।

4.4.20 (ii)

किसी लोक में भ्रमण करे या
भोगों का करती उपसेचन
ये आत्मा के लीला कारज
ये ना आत्मा के हैं बन्धन।

4.4.21

ब्रह्मपुरे में ब्रह्मा सम ही
दिव्य भोग भोगे जीवात्मा
फिर भी जग ना रचती है यह
जग रचते केवल परमात्मा।

4.4.22

शुभ कर्मों को कर जब कोई
ब्रह्म लोक में आत्मा जाती
फिर फिर जीवन पाने से वह
तब निश्चित वह मुक्ति पाती।

॥ इति अध्याय चार, पाद चार ॥

॥ इति ब्रह्म सूत्र ॥
॥ वेदान्त दर्शन ॥

□□□

(पहले फ्लैप का शेष)

◆आत्मा अल्पज्ञ है और ईश्वर सर्वज्ञ।

◆आत्मा सर्वव्यापक नहीं, ईश्वर सर्वव्यापक है। आत्मा पूरे शरीर में सब जगह रहती है। प्रलय के समय सब जड़ और चेतन ईश्वर में लय हो जाते हैं।

◆ईश्वर को तर्क से नहीं समझा जा सकता।

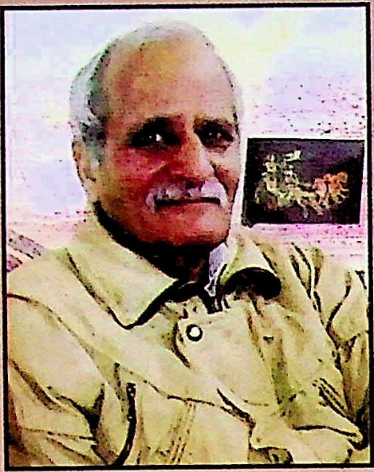
◆कारण काया ही आत्मा को परम धाम तक ले जाती है। ईश्वर ही सब शक्तियों की खान है।

◆आत्मा को उस के किए कर्मों का फल मिलना निश्चित है पर वह किस क्रम में मिलेगा निश्चित नहीं है। यह व्यवस्था ईश्वर करते हैं।

◆स्वप्नों में जो दिखाई देता है, स्वप्नों में जो सुनाई देता है, वह सत्य नहीं होता, जागृत अवस्था की अनुभूतियाँ ही सत्य होती हैं।

◆संसार की रचना का क्रम भिन्न-भिन्न शास्त्रों में भिन्न-भिन्न वर्णित है। वह सिर्फ समझाने के लिए है। सब में एक बात सामान्य है कि संसार की रचना भगवान ही करते हैं।

◆प्रलय के समय सब कुछ ईश्वर में लय हो जाता है, कार्य ब्रह्म, सभी देवता, सभी वेद तथा चर-अचर सृष्टि। भगवान सृष्टि की रचना के समय सब की फिर रचना करता है। फिर सब अपने-अपने कार्य में लग जाते हैं।



रमेशचन्द्र गुप्ता

चीफ़ इन्जीनियर एवं

मैम्बर पब्लिक सर्विस कमीशन (रिटायर्ड)

मूल निवासी :

कोटली, गुलाम जम्मू कशमीर

वर्तमान पता :

48, रिहाड़ी कॉलोनी, जम्मू (जम्मू कश्मीर)-180005

दूरभाष :

1912560696, 96222418773

प्रकाशित ग्रन्थ :

1. श्रीमद्भगवद्गीता

1. कठ आदि नौ उपनिषदों का काव्यानुवाद

2. ब्रह्म सूत्र (वेदान्त दर्शन) काव्य में

आने वाले ग्रन्थ :

◆ साम वेद काव्यानुवाद

AYAN PRAKASHAN

अयन प्रकाशन

साहित्य संस्कार के 38 वर्ष

ISBN 978-93-88471-57-2

9789388471572